रामचरितमानस
से
प्रगतिशील प्रेरणा
- श्रीराम शर्मा आचार्य

रामचरितमानस से प्रगतिशील प्रेरणा

卐

लेखक :
पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

卐

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा
फोन (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९
मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९
फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०१३ मूल्य : ६०.०० रुपये

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

संदर्भ और प्राक्कथन

भारतीय संस्कृति के आदर्शों को व्यावहारिक जीवन में मूर्तिमान करने वाले चौबीस अथवा दस अवतारों की शृंखला में भगवान राम और कृष्ण का विशिष्ट स्थान है । उन्हें भारतीय धर्म के आकाश में चमकने वाले सूर्य और चंद्र कहा जा सकता है । उन्होंने व्यक्ति और समाज के उत्कृष्ट स्वरूप को अक्षुण्ण रखने एवं विकसित करने के लिए क्या करना चाहिए, इसे अपने पुण्य-चरित्रों द्वारा जन साधारण के सामने प्रस्तुत किया है । ठोस शिक्षा की पद्धति भी यही है कि जो कहना हो, जो सिखाना हो, जो करना हो, उसे वाणी से कम और अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करने वाले आत्म-चरित्र द्वारा अधिक व्यक्त किया जाय । यों सभी अवतारों के अवतरण का प्रयोजन यही रहा है, पर भगवान राम और भगवान कृष्ण ने उसे अपने दिव्य चरित्रों द्वारा और भी अधिक स्पष्ट एवं प्रखर रूप में बहुमुखी धाराओं सहित प्रस्तुत किया है ।

राम और कृष्ण की लीलाओं का कथन तथा श्रवण पुण्य माना जाता है । रामायण के रूप में रामचरित्र और भागवत के रूप में कृष्ण चरित्र प्रख्यात है । यों इन ग्रंथों के अतिरिक्त भी अन्य पुराणों में उनकी कथाएँ आती हैं । उनके घटनाक्रमों में भिन्नता एवं विविधता भी है । इनमें से किसी कथानक का कौन सा प्रसंग आज की परिस्थिति में अधिक प्रेरक है यह शोध और विवेचन का विषय है । यहाँ तो इतना जानना ही पर्याप्त है कि उपरोक्त दोनों ग्रंथ दोनों भगवानों के चरित्र की दृष्टि से अधिक प्रख्यात और लोकप्रिय हैं । उन्हीं में वर्णित कथाक्रम की लोगों को अधिक जानकारी है ।

कथा चरित्रों के माध्यम से लोक शिक्षण अधिक सरल पड़ता है । इस रीति से वह सर्वसाधारण के लिए अधिक बुद्धिगम्य हो जाता है और हृदयंगम भी । तत्वदर्शी मनीषियों ने इस तथ्य को समझा था और जनमानस के परिष्कार के लिए आवश्यक लोक शिक्षण की व्यवस्था बनाने के उद्देश्य से कथा शैली को अपनाया था । वही सुबोध रही और लोकप्रिय बनी । अस्तु, एक प्रकार से इसी प्रक्रिया के माध्यम से धर्म चर्चा करने की रीति अपनाई गई और सफल भी हुई । वेद चार हैं और चारों को मिलाकर २० हजार मंत्र हैं । पर एक-एक पुराण का आधार-विस्तार कहीं अधिक है, जितना कि चारों वेदों का सम्मिलित रूप है । अकेले महाभारत में एक लाख से अधिक श्लोक हैं । स्कंद पुराण भी ८१ हजार श्लोकों का है । उपयोगिता के अनुरूप पुराणों का विस्तार होता ही गया । १८ पुराण बने और इसके बाद १८ उप पुराण । यह विस्तार उस शैली की लोकप्रियता और सफलता पर प्रकाश डालता है ।

भगवान राम और भगवान कृष्ण के चरित्रों में लोक-शिक्षण की प्रचुर सामग्री विद्यमान है । रामायण और भगवान के कथानकों के माध्यम से जनमानस का परिष्कार और सामाजिक सुव्यवस्था का प्रतिपादन बहुत ही अच्छी तरह किया जा सकता है, किया जाता भी रहा है ।

इस प्रयास प्रचलन में एक त्रुटि यह थी कि कथा-ग्रंथों का श्रवण एवं पाठ मात्र पुण्य फल प्राप्त करने के लिए पर्याप्त बताया जाने लगा था और नाम जप की महिमा आकाश-पाताल जैसी बताई गई थी । साथ ही भक्ति को अमुक कर्मकांडों के बोध (नवधा भक्ति) तक सीमित रखा जा रहा था । इससे कथा-प्रसंगों की उपयोगिता ही नष्ट न हुई वरन उल्टी गंगा बहने लगी । जब श्रवण, पठन, जप और सरलतम कर्मकांडों में कुछ मिनट लगाने से पाप कट सकते हैं, पुण्य फल, ईश्वर का अनुग्रह और मुक्ति जैसी उपलब्धियाँ सहज ही मिल सकती हैं, तो फिर उन कष्ट साध्य आदर्शों को जीवन में उतारने का झंझट मोल क्यों लिया जाय ? सरल कृत्यों का अत्यधिक माहात्म्य बताने की परोक्ष प्रक्रिया यह हुई कि लोगों ने अनाचार से बचने और सदचार को अपनाने के लिए जिस उत्कृष्ट चिंतन और आदर्श कर्तृत्व की अनिवार्य आवश्यकता है उसकी उपेक्षा आरंभ कर दी । फलत: लोग पाप-कर्मों का दंड मिलने की ओर से निर्भय हो गए । जब पाप अमुक कथा सुनने से नष्ट हो जाते हों और उनका दंड न मिलता हो तो उनके सहारे जो भौतिक लाभ मिल सकते हैं उन्हें क्यों छोड़ा जाय ? इसी

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

प्रकार यदि अति सरल कर्मकांड आध्यात्मिक लक्ष्य प्राप्त करा सकते हैं तो आदर्श जीवन जीने और लोक मंगल के लिए त्याग, बलिदान के झंझट में पड़ने की क्या जरूरत ?

यह उल्टे तर्क लोगों के मन में बैठते चले गए। कथा वाचकों ने इसी सरलता को प्रस्तुत करते हुए शायद सोचा होगा कि इस सरल प्रक्रिया से आकर्षित होकर लोग जल्दी धर्मप्रेमी बनेंगे। पर वैसा होना संभव ही नहीं था और हुआ भी नहीं। छुटपुट क्रिया-कृत्यों की टंट-घंट तो इस प्रलोभन में बहुत फैली पर धर्म की आत्मा का हनन हो गया। धर्माडंबर ओढ़े हुए लोग अपने को पाप दंडों से मुक्त और ईश्वरीय अनुग्रह के अधिकारी मानकर चलने लगे। उन्होंने उत्कृष्ट चिंतन और आदर्श कर्तृत्व को झंझट कहना आरंभ कर दिया। सरलता के आकर्षण ने उस ओर से मुँह मोड़ लेने के लिए जन साधारण को प्रेरणा दी। इस प्रकार कथा शैली के विकास का मूलभूत आधार ही नष्ट हो गया।

सीधी धारा को उल्टी बहाया गया यह अनर्थ ही हुआ। अनर्थ को सुधारना, सही करना आवश्यक था। इसके बिना कथाक्रम का लक्ष्य भ्रष्ट ही बना रहता। रामचरित्र और कृष्णचरित्र का वही उद्देश्य और स्वरूप जन साधारण के सामने रखा जाना चाहिए जिसके लिए उनका अवतरण हुआ। धर्म की स्थापना और अधर्म का उन्मूलन यही दो प्रयोजन अवतार के रहे हैं। यह प्रयोजन उत्कृष्ट चिंतन और आदर्श कर्तृत्व अपनाए बिना और किसी प्रकार पूरा नहीं हो सकता। अवतारों की कथा-गाथाओं में यही तथ्य पग-पग पर उभर रहा है। हमारी कथा शैली की दिशा यही होनी चाहिए। आज धर्म की उपयोगिता सिद्ध करने के लिए, उसके मूल स्वरूप से जनसाधारण को परिचित कराते हुए धर्मनिष्ठा को प्राणवान बनाने का यही तरीका है। अब कर्मकांडों का अलंकारिक माहात्म्य न बताकर चरित्र निष्ठा को अवतारों के अवतरण का मूल प्रयोजन बताया जाय और उसी के अनुगमन की दिशा में लोक मानस को प्रोत्साहित किया जाय।

एक अन्य विकृति कथा-शैली में और भी घुस पड़ी थी जिसमें चरित्र नायकों के जीवन क्रम में ऐसी घटनाएँ जोड़ दी गई थीं जो नैतिक एवं सामाजिक मर्यादाओं के उल्लंघन और अवांछनीय आचरण के उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। लोग गुणाग्रही कम और दोषों के अनुकरण में कुशल होते हैं। जहाँ भी देवताओं, अवतारों, ऋषियों, महामानवों के चरित्रों में दोष की बात सुनते हैं, वहाँ न केवल अश्रद्धा करते हैं, वरन अपनी पथ-भ्रष्टता को सरल स्वाभाविक सिद्ध करने के लिए उन चरित्रों का संदर्भ देते हैं, जो महामानवों के लीला प्रसंग में जोड़ दिए गए हैं। दुःख की बात यह है कि कथावाचक उन्हीं को लोक रंजन की दृष्टि से चटपटा बनाकर कहते रहते हैं। वे भूल जाते हैं कि वे धर्ममंच से किन अवांछनीय प्रेरणाओं का प्रवाह बहा रहे हैं।

कथा शैली के माध्यम से लोक-शिक्षण भारत की वर्तमान मनोभूमि एवं आवश्यकताओं को देखते हुए एक नितांत उपयोगी और वांछनीय प्रक्रिया है। उसे पुनर्जीवित करने के लिए युग निर्माण योजना ने अभिनव प्रयत्न आरंभ किए हैं। उन्हीं में से एक प्रयास भगवान राम और भगवान कृष्ण की कथाओं का सहारा लेकर बौद्धिक, नैतिक एवं सामाजिक उत्कृष्टता स्स्थापित करना भी है। प्रस्तुत रामकथा हाथ में है। रामचरित्र और रामायण के सहारे किस प्रकार प्रवचन किए जाँय और आज की समस्याओं का धर्म समाधान किस प्रकार बताया जाय इसके लिए यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी। एक सप्ताह में कथा पूरी करने की दृष्टि से कथा का संक्षिप्तीकरण आवश्यक था ताकि प्रसंगों पर प्रकाश डालने के लिए अवकाश मिल सके। रामकथा सप्ताह ग्रंथ पहले छप चुका है। स्वतंत्र प्रवचनों का मार्गदर्शन इस पुस्तक से मिल जायेगा। दोनों पुस्तकों का जोड़ा रामचरित्र-रामभक्ति द्वारा जनमानस के परिष्कार के लिए उपयोगी सिद्ध होगा, ऐसा विश्वास है। कृष्ण-कथा के लिए इसी प्रकार भागवत के भी दो ग्रंथ अलग से छापे जा रहे हैं। आशा है इस प्रयास से लोकमंगल में कुछ कहने लायक योगदान मिल सकेगा। धर्म कथा शैली अपनाने वालों का अच्छा मार्गदर्शन यह पुस्तकें कर सकेंगी ऐसा विश्वास किया गया है।

-श्रीराम शर्मा आचार्य

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

विषय-सूची

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

रामचरितमानस से प्रगतिशील प्रेरणा

रामचरितमानस–अलौकिक तीर्थराज

राम-कथा प्रसंग के लिए विनिर्मित 'रामचरितमानस' की रचना गोस्वामी तुलसीदास जी ने तीर्थराज प्रयाग के रूप में की है और बताया है कि इस भावनात्मक दिव्य संगम का स्वरूप निश्चय रूप से परम कल्याणकारक है । इसका दर्श-स्पर्श, मज्जन-स्नान करके जन-मानस सच्चे अर्थों में धन्य बन सकता है । प्रयाग का जो पुण्य वर्णन किया है वह रामचरित मानस के पठन, श्रवण एवं अवगाहन से भली प्रकार मिल सकता है ।

इस दिव्य तीर्थराज में मिलने वाली तीन धाराओं का विवेचन रामायणकर्त्ता ने इस प्रकार किया है–

राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा । सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा ॥
बिधि निषेध मय कलिमल हरनी । करमकथा रबिनदंनि बरनी ॥

प्रथम राम-कथा अर्थात गंगा । इसकी परिधि में ईश्वर विश्वास, भक्ति, आत्मसमर्पण, विश्व-प्रेम आदि आस्तिकता से संबंधित सभी भावनाएँ आती हैं ।

द्वितीय सरस्वती अर्थात ब्रह्म-विचार । ब्रह्म-विद्या, आत्म-ज्ञान आदि अध्यात्म की समस्त पृष्ठभूमि यही है । आत्म-चिंतन, आत्मसुधार, आत्मनिर्माण और आत्म विस्तार की विचारणा को दिव्य सरस्वती कहा गया है ।

तीसरी-यमुना । अर्थात धर्म-धारणा-कर्मनिष्ठा-कर्तव्य परायणता । विधि और निषेध का, औचित्य-अनौचित्य का, करने योग्य और न करने योग्य का निर्धारण इसी धर्म-मर्यादा के आधार पर होता है । उसके द्वारा कलिमलों का, अंतरंग दुर्भावनाओं और बहिरंग दुष्कर्मों का, कषाय-कल्मषों का निवारण होता है ।

तीर्थराज प्रयाग में बहने वाली गंगा, सरस्वती और यमुना को क्रमशः आस्तिकता, आध्यात्मिकता एवं धार्मिकता कहते हैं । इन तीनों का समावेश जिस व्यक्ति या समाज में होगा वहाँ परम शांतिदायक, चरम मंगलमय, दिव्य पुण्य फलदायक स्वर्गीय वातावरण प्रस्तुत होगा ।

राम चरितमानस में प्रतिपादित इस तीर्थराज के प्रभाव से समाज कुकर्मी बनता है अथवा सुकर्मी लोगों का समुदाय बढ़ता है–

'तीरथराज समाज सुकर्मा ।'

इस तीर्थराज तक पहुँचना, उसमें मज्जन करना, कुछ भी कठिन नहीं है । कठिन तो कुकर्मों की दिशा में चलना होता है । सज्जनता तो श्रेष्ठ ही नहीं सरल भी है । इससे देखने, कहने, सुनने वाले नहीं वरन् मज्जन करने वाले लोग समस्त क्लेशों से छुटकारा पाकर परम लक्ष्म और अक्षय परमानंद को प्राप्त करते हैं । सज्जन ही इस तीर्थराज में रुचि लेते हैं । दुर्जन की इधर प्रवृत्ति नहीं होती–

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

सबहिं सुलभ सब दिन सब देसा । सेवत सादर समन कलेसा ॥

यह तीर्थराज आस्तिकता, आध्यात्मिकता और धार्मिकता का संगम आँखों से नहीं देखा जा सकता । यह पार्थिव नहीं है, फिर भी उसका प्रतिफल तुरंत मिलता है । पार्थिव प्रयाग में नहाने से तो प्रायः फल की प्रतीक्षा कभी भविष्य में मिलने की करनी पड़ती है । पर इस भावनात्मक संगम के संबंध में ऐसी बात नहीं है । उसका प्रतिफल तुरंत मिलता है-

अकथ अलौकिक तीरथ राऊ । देहि सद्य फल प्रकट प्रभाऊ ॥
मज्जन फल देखिअ तत्काला । काक होहि पिक बकहु मराला ॥

इस कथा प्रसंग में ओत-प्रोत प्रकाश को हृदयंगम करने पर दृष्टिकोण बदलता है और उसमें उत्कृष्टता का गहरा समावेश होता है, कर्तृत्व में आदर्शवादी प्रक्रिया जुड़ती है । फलतः व्यक्तित्व का कायाकल्प ही हो जाता है । पिछले लोभ, मोह व्यस्त आधि-व्याधि ग्रस्त जीवन को एक नया स्वरूप मिलता है । उसके प्रभाव से काग जैसे दुष्ट कठोर प्रकृति वालों को हंस जैसे विवेकवानों के रूप में परिवर्तित होते देखा जाता है । यह पुण्यफल कालांतर में नहीं, तुरंत-तत्काल मिलता है । रामायण की यह मान्यता सर्वथा सत्य और प्रत्यक्ष है ।

जो केवल जीभ से रामायण पढ़ने और कान से सुनने तक को ही पर्याप्त मानते हैं, उनकी बात दूसरी है । पर जो उसमें प्रतिपादित तथ्यों को हृदयंगम करने और व्यावहारिक जीवन में समावेश करने का साहस करते हैं उन्हें इस पर प्रेरणा प्रकाश का चमत्कारी लाभ निश्चित रूप से मिलता है । काग का पिक और वक का मराल हो जाना आश्चर्यजनक तो है पर रामायण प्रेमियों के लिए असंभव नहीं ।

प्रयाग में एक अक्षय वट भी है जिसे पृथ्वी का कल्पवृक्ष कहा जाता है । दिव्य दृष्टि से वह अपने धर्म-कर्तव्य का दृढ़तापूर्वक पालन करता है । कर्तव्य परायण लोग वे समस्त भौतिक और आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करते हैं । कल्पवृक्ष के नीचे बैठने वालों की समस्त मनोकामनाएँ पूर्ण होती है । अक्षय वट का आश्रय लेने वाले आप्त काम हो जाते हैं । यह अक्षय वट कभी नष्ट न होने वाला प्रकाश है । कल्पवृक्ष क्या है इसे तुलसीदास जी ने दृढ़ कर्तव्य निष्ठा के रूप में ही प्रस्तुत किया है-

बट बिस्वास अचल निज धर्मा । तीरथराज समाज सुकर्मा ॥

धर्म और कर्म की उत्कृष्टता तीर्थराज प्रयाग के पुण्यफल को प्रत्यक्ष एवं सार्थक बनाती है ।

रामकथा को यदि इसी दृष्टि से कहा, सुना, पढ़ा और समझा जाय कि उससे प्रस्तुत प्रकाश को हृदयंगम करना है और अपने क्रिया-कलाप में सम्मिलित करना है, तो फिर उसका वर्णित माहात्म्य पूरी तरह सार्थक होकर रहेगा । राम चरितमानस के सहारे मनुष्य भवबंधनों से मुक्त होगा और देवोपम स्वर्गीय जीवन का आनंद लाभ करेगा । आंतरिक दृष्टि से परिष्कृत व्यक्ति भौतिक दृष्टि से भी दुःखी और समुन्नत ही रहते हैं, यह तथ्य सर्वविदित है । लौकिक तीर्थराज प्रयाग का अलंकारिक पुण्य-फल हम यथार्थ में रामचरित मानस में वर्णित दिव्य-भावना, दिव्य विचारणा और दिव्य प्रक्रिया की, आस्तिकता, आध्यात्मिकता और धार्मिकता की त्रिधारा का मज्जा -सेवन करके ही प्राप्त कर सकते हैं ।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

आस्तिकता प्रकरण

ईश्वर के तीन स्वरूप—निराकार, साकार और अवतार

किस भगवान की किस प्रकार आराधना की जाय इस गुत्थी को सुलझाते हुए रामायण ने ईश्वर को साकार और निराकार रूप में प्रस्तुत किया है । निराकार अर्थात चेतना की सतोगुणी प्रवृत्तियाँ जो हमारे अंतःकरण में दिव्य भावनाओं एवं मस्तिष्क में दिव्य विचारणा के रूप में रहती हैं । विश्वव्यापी निराकार ब्रह्मसत्ता का संपर्क मानवी चेतना के साथ इसी रूप में होता है ।

साकार ईश्वर इस समस्त ब्रह्मांड के, विराट-विश्व के रूप में दृष्टिगोचर होता है । लोक मंगल के लिए प्रादुर्भूत महान अभियानों एवं अपने आदर्शवादी क्रिया-कलाप द्वारा जन साधारण का मार्गदर्शन करने वाले महामानवों के रूप में ही उस साकार ब्रह्म को देखा जाता है । अवतारों का यही प्रयोजन है । रामायण में निराकार, साकार और अवतार के रूप में परमेश्वर का वर्णन किया गया है और उन्हीं की भक्ति करने की प्रेरणा दी गई है ।

ब्रह्म का यथार्थ स्वरूप चेतनात्मक सर्वव्यापी सत्ता के रूप में है, जो इस विश्व का उद्भव, अभिवर्धन एवं परिवर्तन करने में निरत है । उसकी इन गतिविधियों को ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहते हैं । मनुष्य में यह ईश्वरीय सत्ता इच्छशक्ति (भावना), ज्ञान शक्ति (विचारणा) और क्रिया शक्ति (हलचल) के रूप में दृष्टिगोचर होती है । इन्हीं तीनों को गायत्री, सावित्री और सरस्वती कहते हैं । यह तीनों ही ब्रह्मा की पत्नियों के रूप में पुराण-साहित्य में वर्णित हुई हैं ।

जो सर्वव्यापक है उसे निराकार होना चाहिए । रूप बनाने में तो एक देशीय होना पड़ेगा और उसकी सर्वदेशीय विशेषता समाप्त हो जायगी । इसीलिए मूलतः ब्रह्म निराकार है, उसे निर्गुण भी कहते हैं । मनुष्य के संपर्क में जब वह व्यापक सत्ता जितनी मात्रा में आती है, उतने ही अनुपात में उसमें दिव्य भावनाएँ, उत्कृष्ट विचारणाएँ और आदर्शवादी क्रिया चेष्टाएँ दृष्टिगोचर होने लगती हैं । इस निराकार भावना का दर्शन इन्हीं इच्छा, ज्ञान और क्रिया की दिव्यता के रूप में हो सकता है ।

ईश्वर चेतना रूप है-यह भाव शिव-उमा संवाद में इस प्रकार व्यक्त किया गया है-

सहज प्रकास रूप भगवाना । नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिताना ॥

और भी लिखा है-

जगत प्रकाश्य प्रकाशक रामू । मायाधीस ग्यान गुन धामू ॥

किन्तु मनुष्य स्वयं भी भ्रमित होकर सगुण-निर्गुण में भेद समझने लगता है । जैसे सूर्य और चंद्र एक-एक ही हैं, पर आँखों को एक तरफ से अँगुली से दबा कर देखने से वह दो दिखाई देते हैं । कहा है-

चितव जो लोचन अँगुलि लाएँ । प्रकट जुगल ससि तेहि के भाएँ ॥

दिव्य चेतना के रूप में ब्रह्म की व्यापकता का सुंदर चित्रण शिव-पार्वती संवाद (बालकांड) में देखने को मिलता है-

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

बिनु पग चलै सुनै बिनु काना । कर बिनु करम करै जग नाना ॥
आनन रहित सकल रस भोगी । बिनु बानी वक्ता बड़ जोगी ॥

इसी निराकार परब्रह्म की महामानवों एवं महान अभियानों के रूप में जब परिलक्षित होती हो तो उस दृश्यमान श्रेष्ठता को साकार ब्रह्म कहते हैं । इनमें वस्तुतः कोई भेद नहीं है । एक ही सत्ता के दो अप्रकट और प्रकट रूप हैं ।

इस भाव को शिवजी पार्वतीजी से प्रकट करते हुए कहते हैं–

राम ब्रह्म व्यापक जग जाना । परमानन्द परेश पुराना ॥

बन्दना–प्रसंग में भी भगवान को विश्वरूप में सगुण लीला करने वाला कहा है–

एक अनीह अरूप अनामा । अज सच्चिदानन्द पर धामा ॥
व्यापक रूप विश्व भगवाना । तेहिं धरि देह चरित कृत नाना ॥

भगवान राम के जन्म के उपरांत कवि की टिप्पणी है–

व्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुन बिगत बिनोद ।
सो अज प्रेम भगति बस, कौसल्या के गोद ॥

वानर वीरों की अयोध्या से विदाई के समय स्वयं भगवान उन्हें अपने सर्वगत रूप की उपासना की शिक्षा देते हुए कहते हैं–

अब गृह जाहु सखा सब, भजहु मोहि दृढ़ नेम ।
सदा सर्वगत सर्वहित, जानि करहु अति प्रेम ॥

लक्ष्मणजी निषादराज को यही तथ्य समझाते हुए कहते हैं–

राम ब्रह्म परमारथ रूपा । अविगत अलख अनादि अनूपा ॥

उत्तरकांड में काकभुशुंडिजी भी भगवान का यही स्वरूप बताते हैं कि भगवान व्यापक हैं और व्याप्य भी वही हैं । वे अखंड, अनंत, अखिल और अमोघ शक्ति के रूप में हैं–

व्यापक व्याप्य अखंड अनन्ता । अखिल अमोघ सक्ति भगवन्ता ॥

साकार ब्रह्म का वर्णन करते हुए इस संसार को ही भगवान के विराट रूप में वर्णित किया गया है । कहा है कि यह समस्त विश्व–ब्रह्मांड भगवान का ही रूप है, यह मानकर प्राणिमात्र की, जड़–चैतन्य की सेवा–साधना करना यह ईश्वर भक्ति का व्यावहारिक रूप है ।

अर्जुन को भगवान कृष्ण ने विवेक की आँखें दीं । "दिव्यं ददाति ते चक्षु" । चमड़े की आँखों से तो जड़ प्रकृति के पदार्थ ही देखे जा सकते हैं । भगवान चैतन्य हैं उनका कोई रूप नहीं । रूपवान ईश्वर को देखना हो तो उसके लिए विवेक के दिव्य चक्षु चाहिए । वे ही भगवान ने अर्जुन को दिए और अपना दृश्यमान विराट रूप इस सुविस्तृत विश्व के रूप में दिखाया । 'गीता' में इसका विस्तृत अलंकारिक वर्णन है ।

यशोदा को भी बालकृष्ण ने मिट्टी खाने के लिए धमकाये जाने पर अपना मुँह खोलकर यह विराट रूप दिखाया था और बताया था कि यदि ईश्वर का दर्शन करना हो तो नेत्रों से अथवा ध्यान में किसी कल्पित मानस आकृति से काम न चलेगा । इस मूर्तिमान विश्व को ही भगवान का विग्रह मान कर चलना पड़ेगा और उसकी पूजा, श्रम, समय, स्वेद आदि अपनी संपदाओं से करनी होगी । पूजा, उपचार आदि उसी के प्रतीक, प्रतिनिधि हैं ।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

कौशिल्या जब पलने में राम को झुला रही थीं, तब उनकी इच्छा भी भगवान क दर्शन करने की हुई । भगवान ने उन्हें भी अपना विराट रूप दिखा कर समाधान किया । तब काकभुशुंडि जी की भी इच्छा थी । अयोध्या में जन्मे बालकराम को देखने से उनका समाधान न हुआ तब उनने भी अपनी सूक्ष्म बुद्धि से विश्व व्यापी विराट ब्रह्म को देखा संतोष प्राप्त किया । सतीमोह प्रसंग तथा मंदोदरी द्वारा रावण को समझाने के प्रसंग में भी भगवान के विराट रूप का वर्णन 'मानस' में मिलता है ।

भगवान की मूर्तियों में शिवलिंग और शालिग्राम के रूप में शिव एवं विष्णु की प्रतिमाएँ पाई जाती हैं । यह गोलाकार पिंड इस गोल विश्व का ही प्रतीक है । विश्व मानव के रूप में ही, विराट विश्व के रूप में ही दृश्यमान का साक्षात्कार किया जा सकता है । इस ईश्वर दर्शन के तथ्य को रामायण में भली प्रकार प्रस्तुत किया गया है ।

माता कौशिल्या को जब भगवान ने अपना विराट रूप दिखाया था, तब उसका वर्णन मानस में इस प्रकार मिलता है-

दिखरावा मातहिं निज, अदभुत रूप अखंड ।
रोम रोम प्रति लागे, कोटि-कोटि ब्रह्मांड ॥
अगनित रवि ससि सिब चतुरानन । बहु गिरि सरित सिन्धु महि कानन ॥
काल कर्म गुन ज्ञान सुभाऊ । सोउ देखा जो सुना न काऊ ॥

काकभुशुंडि जी ने अखिल ब्रह्मांड के रूप में भगवान के दर्शन किए थे-

उदर माँझ सुनु अंडजराया । देखेउँ बहु ब्रह्माण्ड निकाया ॥
अति बिचित्र तहँ लोक अनेका । रचना अधिक एक ते एका ॥
कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा । अगनित उडुगन रबि रजनीसा ॥
अगनित लोकपाल जम काला । अगनित भूधर भूमि बिसाला ॥
भिन्न-भिन्न मैं दीख सबु, अति बिचित्र हरिजान ।
अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु, राम न देखेउँ आन ॥

मोह जनित सती को भगवान राम ने अपना विराट रूप दिखाया जिसमें कण-कण को जड़-चेतन राममय देखकर सती को महान आश्चर्य हुआ और उन्हें अपनी भूल ज्ञात हुई ।

सती दीख कौतुक मग जाता । आगे रामु सहित श्री भ्राता ॥
फिर चितवा पाछे प्रभु देखा । सहित बन्धु सिय सुन्दर वेषा ॥
जहँ चितवहि तहँ प्रभु आसीना । सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रवीना ॥
देखे सिब विधि विस्नु अनेका । अमित प्रभाउ एक तें एका ॥

गीता के ११ वें अध्याय में और यजुर्वेद के पुरुष सूक्त में वर्णित भगवान के विश्वरूप का चित्रण रामचरितमानस के लंकाकांड में भी आया है । मंदोदरी रावण के सामने कह रही है ।

विस्वरूप रघुवंसमनि, करहु बचन विस्वासु ।
लोक कल्पना वेद कर, अंग अंग प्रति जासु ॥
पद पाताल सीस अज धामा । अपर लोक अंग अंग विश्रामा ॥
भृकुटि विलास भयंकर काला । नयन दिवाकर कच घन माला ॥
जासु घ्रान अस्विनी कुमारा । निसि अरु दिवस निमेष अपारा ॥

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

श्रवन दिसा दस बेद बखानी । मारुत स्वास निगम निज बानी ॥
अधर लोभ जम दसन कराला । माया हास बाहु दिग्पाला ॥
आनन अनल अंबुपति जीहा । उतपति पालन प्रलय समीहा ॥
रोम राजि अष्टादस भारा । अस्थि सैल सरिता नस जारा ॥
उदर उदधि अधगो जातना । जगमय प्रभु का बहु कल्पना ॥
अहंकार सिब बुद्धि अज, मन ससि चित्त महान ।
मनुज बास सचराचर, रूप राम भगवान ॥

भगवान को जड़-चेतन सब में व्यापक मानकर हर पदार्थ का श्रेष्ठतम सदुपयोग और हर प्राणी में भगवान की आभा ज्योतिर्मय देखकर उसके साथ सद्व्यवहार करना यही विराट रूप मान्यता को कार्यान्वित करना है । 'रामायण' इसी पथ पर चलने की जनसाधारण को प्रेरणा देती है । इस भाव को मानसकार ने 'वंदना-प्रसंग' में बड़ी सुंदरता से प्रस्तुत किया है-

जड़ चेतन जग जीव जत, सकल राममय जानि ।
बंदौं सबके पद कमल, सदा जोरि जुग पानि ॥
आकर चारि लाख चौरासी । जानि जीव जल थल नभ वासी ॥
सियाराम मय सब जग जानी । करौं प्रनाम जोरि जुग पानी ॥

यही भाव दूसरे ढंग से काकभुशुंडि-श्राप के प्रसंग में शिवजी के मुख से प्रकट हुआ है-

उमा जे रामचरन रत, विगत काम मद क्रोध ।
निज प्रभुमय देखहिं जगत, केहि सन करहिं विरोध ॥

निराकार और साकार का, निर्गुण और सगुण का भेद और विवाद बहुत समय से चला आता है और दोनों पक्ष अपने-अपने समर्थन के लिए भारी खींचतान करते हैं । तुलसीदास जी ने दोनों का समन्वय किया है और दोनों में अंतर करने की बात को निरर्थक बताया है । परब्रह्म को निराकार मानकर उसे अपने भीतर सद्भावनाओं, सद्विचारणाओं एवं सत्प्रवृत्तियों के रूप में धारण करना-यह निराकार भक्ति हुई । विराट ब्रह्म को संसार-व्यापी मानकर सबके साथ सद्व्यवहार करना-यह साकार भक्ति हुई । दोनों एक दूसरे के पूरक हैं । इसमें विवाद का कोई कारण नहीं । साकार और निराकार ब्रह्म की एकता ही युक्तिसंगत है । 'रामायण' की यही मान्यता है । शिव-पार्वती संवाद में यह तथ्य प्रतिपादित है-

सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा । गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा ॥

'दोहावली' में उल्लेख है-

'हिय निर्गुन नयनहि सगुन ।'

भगवान राम की स्तुति में सम्बोधन है-

निर्गुन सगुन विषम सम रूपा । ग्यान गिरा गोतीत अनूपा ॥

'बालकांड' में ही नामरूप-वर्णन प्रसंग में उल्लेख है-

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म स्वरूपा । अकथ अगाध अनादि अनूपा ॥

'किष्किंधाकांड' में शरद-वर्णन के प्रसंग में यही भाव अलंकारिक रूप में प्रस्तुत किया गया है-

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

फूले कमल सोह सर कैसा । निर्गुन ब्रह्म सगुन भए जैसा ॥

ब्रह्म के व्यक्त-अव्यक्त रूप का स्पष्टीकरण मानस के प्रारंभिक-प्रसंग में ही इस प्रकार मिलता है-

एक दारुगत देखिअ एकू । पावक सम जुग ब्रह्म विवेकू ॥

अर्थात काष्ठ के भीतर रहने वाले और उसके जलते स्वरूप में प्रकट अग्नि वस्तुतः एक ही है । इसी प्रकार ब्रह्म भी प्रकट और अप्रकट रूप में रहता है ।

निर्गुण-सगुण की एकरूपता समझाते हुए शिवजी पार्वती जी से कहते हैं-

जो गुन रहित सगुन सोई कैसे । जल हिम उपल विलग नहिं जैसे ॥
अगुन अरूप अलख अज जोई । भगत प्रेम बस सगुन सा होई ॥

प्रारंभिक प्रसंग में ही ऋषियों के संवाद में व्यक्त किया गया है-

एक अनीह अरूप अनामा । अज सच्चिदानंद परधामा ॥
ब्यापक विश्वरूप भगवाना । तेहि धरि देह चरित किय नाना ॥

विराट ब्रह्म, विश्वमानव के अतिरिक्त भगवान का तीसरा स्वरूप अवतार के रूप में हैं । अवतार मूलतः युग की विसंगतियों का समाधान करने के लिए जन-मानस को उभारने वाली दिव्य प्रेरणाओं के रूप में होते हैं । उस प्रेरणा का नेतृत्व जो महामानव करते हैं उन्हें लोग अवतारी आत्माएँ कहते हैं । वे न केवल वाणी, लेखनी, प्रेरणा, मार्गदर्शन आदि से वरन अपने उज्ज्वल चरित्र से जनसाधारण में परिवर्तनकारी उत्साह उत्पन्न करते हैं । वे युग पुरुष के रूप में संत, सुधारक और शहीद के रूप में अपना चरित्र, कर्तृत्व उपस्थित करते हैं और जन मानस में अनुकरण की, अनुगमन की चेतना उत्पन्न करते हैं । इन्हें साकार ब्रह्म या अवतारी महापुरुष कह सकते हैं । इनके अवतरण का प्रयोजन सामयिक विकृतियों का निराकरण करके सनातन धर्म परंपराओं की पुनः प्रतिष्ठापना करना होता है । वे असंतुलन को संतुलन में परिणत करती हैं । विकृतियों से संघर्ष करके सत्प्रवृत्तियों का पुनः प्रचलन करती हैं । अवतारों का यही उद्देश्य होता है । वे समय-समय पर अनेक क्षेत्रों में, अनेक रूपों में अवतरित होते हैं और आवश्यक अभियानों का नेतृत्व करके समय की पुकार को पूरा करते हैं ।

वस्तुतः कोई एक व्यक्ति कुछ भी नहीं कर सकता, चाहे वह कितना ही बड़ा या शक्तिशाली क्यों न हो । युग-परिवर्तन जैसे बड़े प्रयोजन तो निश्चित रूप से जन-सहयोग से ही संभव होते हैं । संघशक्ति, जनशक्ति ही कोई बड़े उद्देश्य पूरे कर सकती है । देवताओं की सम्मिलित शक्ति का दुर्गा के रूप में प्रादुर्भाव और ऋषियों के संग्रहीत रक्त के घट से बनी सीता का जन्म इसी तथ्य का उद्घाटन करते हैं । भगवती, दुर्गा एवं सीता के कारण दुर्दान्त असुरता के निरस्त होने का वर्णन उनके सुविस्तृत चरित्रों में विद्यमान है । भगवान राम का रीछ-वानरों की सेना खड़ी करना, उनकी सहायता से समुद्र का पुल बाँधा जाना, लंका विनाश और रामराज्य की स्थापना किया जाना, इस तथ्य को और भी अधिक स्पष्ट करता है । भगवान कृष्ण ने अकेले ही नहीं, गोप ग्वालों की लाठियों का सहारा लगवा कर गोवर्धन पर्वत उठाया था । उन्होंने अपना इच्छित महाभारत स्वयं नहीं लड़ा वरन पांडवों को आगे करके, विशाल सैन्य संगठन करके तथा सुनियोजित योजना को क्रियान्वित करके ही पूरा किया था । भगवान बुद्ध को अपने समय की विकृतियों को निरस्त करने के लिए ढाई लाख

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

भिक्षु-भिक्षुणियों की सेना खड़ी करनी पड़ी । महात्मा गाँधी, गुरु गोविन्द सिंह जैसे अवतारी महामानवों को इसी प्रक्रिया का नेतृत्व करना पड़ा था । वस्तुतः शक्ति उस युग-चेतना में रहती है जो ईश्वर की इच्छा के कारण अपने समय में आँधी-तूफान की तरह उठती है । उस दृश्यमान अंधड़ के झोंके चक्रवात के रूप में सामने आते हैं । वस्तुतः चक्रवात अंधड़ का एक छोटा-सा रूप भर होते हैं । एक आँधी में कई चक्रवात भी उठते दिखाई पड़ते हैं । एक समय में कई अवतार भी होते हैं । राम और परशुराम दोनों ही अवतार गिने जाते हैं । दोनों एक ही समय में हुए । इतना ही नहीं उनको एक दूसरे को पहचानने में तर्क और प्रमाणों का सहारा लेना पड़ा ।

जिस रूप में भी हो शरीरधारी अवतारों के अवतरण का उद्देश्य धर्म की स्थापना और अधर्म का विनाश ही प्रमुख है । इसी प्रयोजन के लिए उनके विभिन्न चरित्र एवं क्रिया-कलाप होते हैं । 'गीता' में भगवान कहते हैं-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मनं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

'राम चरितमानस' में भी यही तथ्य शिव-पावर्ती संवाद (बालकांड) में मिलता है-

जब जब होई धरम कै हानी । बाढ़हिं असुर महा अभिमानी ॥
करइ अनीति जाइ नहिं बरनी । सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी ॥
तब तब प्रभु धरि मनुज सरीरा । हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ॥

मानसकार ने राम-जन्म के प्रसंग में यही तथ्य दुहराया है-

'बिप्र धेनु सुर सन्त हित, लीन्ह मनुज अवतार ।'

वन-प्रसंग में आता है-

राम भगत हित नर तनु धारी । सहि संकट किय साधु सुखारी ॥

विभीषण से भगवान राम ने अवतार का उद्देश्य बताते हुए कहा-

तुम्ह सारिखे सन्त प्रिय मोरे । धरउँ देह नहिं आन निहोरे ॥

भगवान देवता, धरती माता, गौ, सज्जनों के कल्याण करने के लिए अवतार लेते हैं और प्रभु परायण धर्मात्मा लोग अपना निजी सुख छोड़कर उनका साथ देने में तत्पर होते हैं । काकभुशुंडि जी अपना मत व्यक्त करते हैं-

निज इच्छा प्रभु अबतरइ, सुर महि गो द्विज लागि ।
सगुन उपासक संग सब, रहहिं मोच्छ सुख त्याग ॥

अनीति पीड़ित सज्जनों को आश्वासन देते हुए भगवान ने कहा कि उन्हें डरने एवं निराश होने की आवश्यकता नहीं है । पृथ्वी का भार हल्का करने के लिए मेरा अवतार होगा और अनीति निरस्त होगी । आप लोग अपना मन छोटा न करें और निर्भयता पूर्वक अपना साहस बनाये रहें । देवताओं द्वारा स्तुति प्रार्थना किए जाने पर आकाशवाणी से यह आश्वासन प्राप्त होता है-

जनि डरपहुँ मुनि सिद्ध सुरेसा । तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा ॥
हरिहऊँ सकल भूमि गरुआई । निर्भय होह देव समुदाई ॥

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अपने चरित्र द्वारा मनुष्यों को कर्तव्य पालन का उद्बोधन एवं मार्गदर्शन करने के लिए ही भगवान का अवतार होता है । जो महामानव इस प्रयोजन को पूरा करते हैं उन्हें भगवान कहते हैं । ऐसे भगवान एक समय में कई-कई भी होते हैं । 'वाल्मीकि रामायण' के व्याख्याकार गोविन्दराज ने इस संदर्भ में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है-

"स्वाचार मुखेन मनुष्याम् शिक्षयतुं रामादि रूपेण चतुर्धावतार ।"

अर्थात "अपने आचार रूपी मुख से मनुष्यों को धर्माचरण की शिक्षा देने के लिए राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के चार रूपों में अवतार लिया ।"

वाल्मीकि जी ने देवर्षि नारद से किसी ऐसे महान व्यक्ति के चरित्र को जानना चाहा था जिसमें समस्त गुण एक साथ निवास करते हों । उन्होंने पूछा-"इस समय संसार में क्या कोई ऐसा गुणवान व्यक्ति है कि जो बल से संपन्न होने के साथ-साथ धर्मात्मा, सत्यवादी, कृतज्ञ और अपने व्रत में सुदृढ़ रहने वाला हो ।"

कान्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्य बीर्यवान् ।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः ॥

महर्षि वाल्मीकि को तब देवर्षि नारद ने राम-कथा सुनाई ।

संसार की विपत्तियों का निवारण करने के लिए महामानवों का स्वयं कष्ट सह कर विश्व-कल्याण के लिए घोर प्रयत्न करना ही एक मात्र उपाय है । जब तक विशिष्ट व्यक्ति आगे नहीं आते और अपनी आदर्शवादी तपश्चर्या का प्रमाण देकर जन साधारण को प्रभावित करने वाली परिस्थितियाँ उत्पन्न नहीं करते तब तक विपत्ति का निवारण नहीं हो सकता । यदि श्रेष्ठ मनुष्य शौक, मौज की जिन्दगी जीते हैं-सुखोपभोग में निरत पड़े रहते हैं तो अनीति के निराकरण का रास्ता ही बंद हो जायगा । इस तथ्य को समझते हुए देवता चाहते थे कि राम राजगद्दी का उपयोग न करें वरन तपश्चर्या और संघर्षशीलता का रास्ता अपनावें । ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करने के लिए देवगण शारदा से प्रार्थना करते हैं कि वे इसके लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ उत्पन्न करें । उन्होंने कहा-

विपति हमारि विलोकि बड़ि, मातु करइ सोइ आजु ।
राम जाहिं वन राज तजि, होहिं सकल सुरकाजु ॥

रामायण में भगवान के चार रूपों का वर्णन किया गया है-(१) सर्वव्यापी नियन्ता परब्रह्म, (२) निराकार परमेश्वर, (३) साकार सगुण विराट परमात्मा, (४) संतुलनकर्त्ता अवतार ।

यह चार भगवान नहीं वरन एक ही परब्रह्म सत्ता की चार प्रक्रियाएँ हैं जिनका रहस्योद्घाटन ब्रह्माजी ने चार वेदों के रूप में किया है ।

सर्वव्यापी परमात्मा से कोई स्थान छिपा नहीं है । वे हमारी गुप्त प्रकट विचारणाएँ और क्रियाएँ भली प्रकार देखते-जानते हैं । वे न्यायकारी हैं । नियम और मर्यादा में स्वयं रहते और दूसरों को रखना चाहते हैं । जो अनुशासन में रहते हैं वे नियंता का अनुग्रह पाकर सुखी रहते हैं, समुन्नत बनते हैं । जो उच्छृंखलता बरतते हैं, मर्यादाएँ तोड़ते हैं और अवांछनीयता अपनाते हैं, वे नियामक शक्ति द्वारा कठोर दंड के भागी बनते हैं । सब की आत्मा में अपनी आत्मा और अपनी आत्मा में सबकी आत्मा

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

समाई हुई है । हम सब एक हैं इसलिए एकता की ओर चलें, अनेकता को भूलें । सबके सुख में अपना सुख और सबके दु:ख में अपना दु:ख देखें । 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की दृष्टि रखें और प्रत्येक प्राणी के साथ सद्व्यवहार करें । प्रत्येक पदार्थ को ईश्वर की संपत्ति समझकर उसका सदुपयोग करें । यह परब्रह्म की उपासना हुई ।

निराकार परमेश्वर हमारे स्थूल शरीर में सत्कर्मों के रूप में, सूक्ष्म शरीर में गुण तथा श्रेष्ठ चिंतन के रूप में मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के परिष्कार के रूप में निवास करता है । स्वाध्याय सत्संग एवं मनन-चिंतन द्वारा अपनी विचारणाएँ उत्कृष्ट बनाकर सूक्ष्म शरीर को, मस्तिष्क को उच्चस्तरीय बनाएँ । कारण शरीर अर्थात हृदय, अंत: करण को श्रद्धा, विश्वास, करुणा, मैत्री, उदारता, पवित्रता, आत्मीयता, सेवा, साधना जैसी सद्भावनाओं से ओत प्रोत रखें । जीवन का स्वरूप और उद्देश्य समझें तथा उस दिशा में अपनी चेतना को अग्रसर करें जो जीवन-लक्ष्य तक भगवान के सान्निध्य तक पहुँचाती है ।

साकार ब्रह्म यह विराट विश्व है । आत्माओं के समूह का नाम परमात्मा है । यह समाज ही समष्टि परमेश्वर है । संसार में श्रेष्ठता उत्पन्न करना, उसे समुन्नत बनाने के लिए लोक मंगल के प्रयत्न करना, अपने ऊपर चढ़े हुए समाज के ऋण को चुकाने के लिए जन कल्याण के प्रयोजनों में निरत रहना, अपने व्यवहार में सज्जनता का समावेश, सत्प्रवृत्तियों से भरा सहज स्वभाव बनाकर, इस संसार को भगवान की प्रतिमा मानते हुए सदा सद्भावनाओं और सत्कृर्मों से ओत प्रोत रहना-यह विराट ब्रह्म की उपासना है ।

अवतारी अभियान युग की विकृतियों का समाधान तथा अनीति-विकृति को निरस्त करके धर्म-संतुलन स्थापित करने के लिए समय-समय पर आविर्भूत होते हैं । उनका नेतृत्व करने के लिए अवतारी युग पुरुष आगे आते हैं और अपने व्यक्तित्व, चरित्र एवं कर्तृत्व से संसार का मार्गदर्शन करते हैं, परिवर्तन की भूमिका बनाते हैं । युग धर्म को पहचानते हुए हमें रीछ-बंदरों की तरह, गोप-गोपियों की तरह उनका अनुसरण करना चाहिए । हनुमान और अर्जुन की भूमिका निबाहने के लिए साहसपूर्वक उस अभियान में योगदान करना चाहिए ।

चार प्रकार की ईश्वरीय सत्ता की यही चतुर्विधि उच्चस्तरीय उपासना है । इसी की प्रेरणा प्राप्त करने के लिए जप, ध्यान, व्रत, अनुष्ठान आदि के विभिन्न उच्चस्तरीय कर्मकांडों का सहारा लिया जाता है । इन्हीं तथ्यों से रामायण की प्रकाश प्रेरणाएँ भरी पड़ी हैं ।

भक्ति की महिमा

भगवान को प्राप्त करने की चेतना को परिष्कृत सतोगुणी स्थिति तक पहुँचाने की भाव-विभोरता भक्ति है । इसी का दूसरा नाम प्रेम है । मोह होता है-व्यक्तिगत स्वार्थ, संकीर्णता का परिपोषण । प्रेम होता है-आदर्शों के लिए, लोकमंगल के लिए, भगवान के लिए आत्म-समर्पण । प्रेम में आत्मीयता का विस्तार है । शरीर और परिवार के छोटे हित चिंतन में आदर्शों का परित्याग कर कुछ भी भला-बुरा करते रहने को, उतनी परिधि में ताना-बाना बुनते रहने को मोहग्रस्त माया-बंधन कहते हैं । इससे ऊपर उठकर आत्म परिष्कार के मार्ग पर चलते हुए सत्प्रवृत्तियों के सुविस्तृत क्षेत्र को

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

विस्तृत करते रहने को ईश्वर उपासना कहते हैं । इसी पथ को अपनाना श्रेय पथ अथवा भक्ति-मार्ग कहलाता है ।

इस मार्ग पर चलने वाले साधक को मन को साधने के लिए मनोवैज्ञानिक उपचार भी करना पड़ता है । सर्वव्यापी, सत्‌चित और आनंदमय, अरूप, अनाम, अचिन्त्य सत्ता को मनुष्य जैसी स्थिति में कल्पित करना पड़ता है, उसे शरीर मानने का उपक्रम करना पड़ता है, साथ ही यह भी सोचना पड़ता है कि वे स्वामी और हम सेवक हैं । अथवा वे मातु-पिता, स्वामी, सखा आदि किसी बड़े पद पर आसीन हैं और हम उनके भक्त, सेवक आदि हैं । तदनुसार अपनी व्यक्तिगत इच्छा छोड़कर अपने स्वामी के अनुयायी बन रहे हैं । यह द्वितीय स्तर का, उसी प्रकार का मानसिक अभ्यास है, जैसे कि प्रारंभिक बाल-कक्षा के छात्रों को वस्तुओं के समर्पण एवं शारीरिक क्रिया-कलापों के कर्मकांड द्वारा ईश्वर-भक्ति के उपचार रूप में कराये जाते हैं । प्राथमिक कक्षा में कर्मकांड परक उपचार-द्वितीय कक्षा में भगवान को उच्च व्यक्ति के रूप में कल्पित करके उसके दास, सेवक आदि बनने की भूमिका गढ़ना और उस क्षेत्र की कल्पनाओं में उड़ान भरते हुए अपनी अंत:चेतना में कामना त्याग का, ईश्वर-प्रेम, दिव्य भावनाओं के प्रति आत्म-समर्पण का अभ्यास करना । साकार-भक्ति का यही स्वरूप एवं प्रयोजन है ।

इससे अगला चरण निराकार-भक्ति है । इसी सर्वोच्च स्थिति को ब्रह्म-परायणता कहते हैं । इस स्थिति में पहुँची हुई चेतना अपनी व्यक्तिवादी, भोगवादी समस्त संकीर्णताओं का परित्याग करके समष्टिवादी, सेवाभावी, आदर्शवादी दिव्यप्रवाह में बहना आरंभ कर देती है । उससे प्रभावित चिंतन एवं कर्तृत्व व्यष्टि और समष्टि को उत्कृष्ट बनाने में ही सर्वतोभावेन समर्पित हो जाता है । इस स्थिति की मन:स्थिति को ईश्वर परायणता और भक्ति के नाम से पुकारा गया है । प्रेम का तात्पर्य ही आत्मीयता का अधिकाधिक विस्तार है । अपने हित चिंतन की जिस प्रकार की ललक जन साधारण में रहती है, उससे असंख्य गुनी उमंगें जब सदुद्देश्य की दिशा में आगे बढ़ने के लिए उठने लगें, तब समझना चाहिए कि पराभक्ति की, ब्रह्म-परायणता की यथार्थ स्थिति हमारी अंत:चेतना में अवतरित हो गई । इस भक्ति चेतना का अनुदान पाकर मनुष्य महामानव, देव पुरुष बनता है और सब प्रकार धन्य हो जाता है । इस स्थिति में आत्म संतोष एवं आत्मानंद की असीम उपलब्धि होती है । इसी को प्राप्त करना जीवन का परम लक्ष्य है ।

रामायण का लक्ष्य इसी पराभक्ति तक मानव-चेतना को पहुँचाना है । उपलब्धि का माहात्म्य बताते हुए काकभुशुंडि गरुड़ से कहते हैं कि ऐसी भक्ति मिलने पर अंत:करण में परम प्रकाश उत्पन्न होता है । उत्तरकांड में इस प्रसंग में कहा गया है-

राम भगति चिन्तामणि सुन्दर । बसइ गरुड़ जाके उर अन्तर ॥
परम प्रकाश रूप दिनराती । नहिं कछु चहिअ दिया घृत बाती ॥

ईश्वर भक्त की समस्त विपत्तियाँ और भय भीरुताएँ नष्ट हो जाती हैं । विभीषण भगवान की शरण में आने के बाद अपनी यही अनुभूति व्यक्त करते हैं-

अब मैं कुशल मिटे भय सारे । देखि राम पद कमल तुम्हारे ॥
बचन काय मन मय गति जाही । सपनेहु बूझिय विपति कि ताही ॥

भक्त की आदर्शवादी मन:स्थिति वस्तुत: ऐसी ही होती है कि उसे किसी

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

विपत्ति से डर नहीं लगता और न किसी त्रास या क्षति का डर लगता है । आदर्शवादी में हजार हाथी का बल होने की जो बात कही गई है, वह उसकी मनःस्थिति से ही संबंध रखती है । शरीर भले ही दुर्बल रहे पर उसका अंतरात्मा श्रेष्ठ सन्मार्ग की गरिमा समझता हुआ इतना बलिष्ठ रहता है कि वह संभावित विपत्ति से डरना तो दूर सचमुच संकट आ जाने पर भी उसे अपनी निष्ठा की परीक्षा मानता और साहसपूर्वक उसका सामना करते हुए हर स्थिति में अविचल और निष्ठावान बना रहता है । उपरोक्त चौपाइयों में इसी तथ्य पर प्रकाश डाला गया है ।

जब रावण ने विभीषण पर शक्ति छोड़ी और उसकी रक्षा के लिए श्रीराम उसे अपने सीने पर झेल कुछ देर के लिए मूर्छित हो गए तो विभीषण रावण पर गदा लेकर टूट पड़ा । उस प्रसंग में भक्ति की महिमा बतलाते हुए शंकर जी पार्वती जी से कहते हैं–"हे उमा ! जो विभीषण रावण के सामने देख भी नहीं सकता था वही राम का बल पाकर अब काल बनकर दुर्दान्त युद्ध कर रहा है । अर्थात मनुष्य की निजी शक्ति तुच्छ होती है, उसमें जब भगवान का उद्देश्य और बल मिल जाता है तब समर्थता का ठिकाना नहीं रहता ।

उमा विभीषण रावनहिं, सन्मुख चितव कि काउ ।
सो अब भिरत काल ज्यों, श्री रघुबीर प्रभाउ ॥

उसी प्रकार जब हनुमान जी लंका में निडर होकर अपना कार्य प्रारंभ कर देते हैं तब भी शिवजी कहते हैं–

उमा न कछु कपि कै अधिकाई । प्रभु प्रताप जो कालहिं खाई ॥

स्वयं हनुमान जी भी इस मर्म को समझते हैं और समुद्र लाँघना, लंकादाह आदि कार्यों के लिए प्रभु उनकी प्रशंसा करते हैं तो वे कहते हैं–

सो सब तव प्रताप रघुराई । नाथ न कछू मोर प्रभुताई ॥

भक्ति को आत्म-कल्याण का सर्वश्रेष्ठ साधन बताते हुए रामायण में उसकी प्राप्ति के लिए सद्भावनाओं और सत्कर्मों की अभिवृद्धि को प्रधान आधार माना है । भगवान राम श्री लक्ष्मण जी से भक्ति का मर्म बतलाते हुए कहते हैं–

भगति तात अनुपम सुख मूला । मिलइ जो सन्त होइ अनुकूला ॥
भगति के साधन कहौं बखानी । सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी ॥
प्रथमहि बिप्र चरन अति प्रीती । निज निज कर्म निरत श्रुति रीती ॥
एहि कर फल पुनि विषय विरागा । तब मन धर्म उपज अनुरागा ॥

भक्ति का महत्व काकभुशुंडि-गरुड़ संवाद में स्थान-स्थान पर विभिन्न दृष्टिकोणों से बताया गया है, जैसे भगवान से विमुख होना विपत्तियाँ और असफलताएँ मोल लेना है । प्रभु-आश्रय के बिना भव-बंधन कहाँ छूटते हैं–

रघुपति विमुख जतन कर जोरी । कवन सकइ भव बंधन छोरी ॥
राम बिमुख सुख सपनेहु नाहीं ।
श्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं । रघुपति भगति बिना सुख नाहीं ॥

संसार के सुख-वैभव कितने ही बढ़े-चढ़े क्यों न हों, पर यदि उसके पास ईश्वर-भक्ति नहीं है तो फिर बिना जल वाले बादल की तरह उसे निरर्थक और निस्सार ही मानना चाहिए ।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई । धन बल परिजन कुल चतुराई ।।
भगतिहीन नर सोहइ कैसा । बिनु जल बारिद देखिअ जैसा ।।

इसके विपरीत भक्तिवान पुरुष की स्थिति बतलाते हुए कहा है-

राम भगति मनि उर बस जाके । दुख लवलेस न सपनेहु ताके ।।

भक्ति के प्रभाव से सांसारिक कष्टों से मुक्ति तो मिल ही जाती है । भगवान का सच्चा भक्त भगवान के समान ही हो जाता है । इस प्रसंग में बाल्मीकि जी भगवान से अपना मत प्रकट करते हैं-

'जानत तुम्हहिं तुम्हहि होइ जाई ।'

भक्ति के प्रभाव का और भी अधिक गंभीरता से अनुभव किया श्री काकभुशुंडि जी ने । वे गरुड़ जी से कहते हैं-

मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा । राम ते अधिक राम कर दासा ।।

और स्वयं भगवान भी अपने भक्तों को इसी स्तर का सम्मान देते हैं, भले ही वे सांसारिक दृष्टि से दीन-हीन ही समझे जाते हों । प्रसंग है-

भगवान शवरी के घर स्वयं जाते हैं और उससे अपनी क्षुधा तृप्ति करने के साधन पाकर प्रसन्न होते हैं और सराहना करते हैं-

कंद मूल फल सुरस अति, दिए राम कहँ आनि ।
प्रेम सहित प्रभु खाएहु, बारम्बार बखानि ।।

वंदना प्रकरण में भगवान के इस स्वभाव का वर्णन करते हुए मानसकार ने कहा है कि श्रीराम पेड़ के नीचे बैठे हैं और वांनर वृक्ष की डालों पर । अर्थात भगवान ने अपने को नीचा रखा और भक्तों को अपने से ऊँचे स्थान पर विराजमान किया-

प्रभु तरु तर कपि डार पर, ते किय आपु समान ।
तुलसी कबहूँ राम ते, राहब सील निधान ।।

ईश्वर भक्ति और उसका स्वरूप

ईश्वर प्राप्ति के लिए एकमात्र साधन है-नि:स्वार्थ प्रेम । प्रेम को परमेश्वर कहा गया है । भक्ति का अर्थ है पवित्र प्रेम । इसकी अंत:करण में जब दिव्य किरणें पड़ती हैं तब आत्मा आनंद विभोर हो जाता है और परम तृप्ति अनुभव करता है । इसी के प्राप्त न होने से जीवन अपूर्ण रहता है । अपूर्णता का निराकरण और पूर्णता को ही जीवन का परम लक्ष्य माना गया है । इसी को दूसरे शब्दों में भगवत् प्राप्ति कहते हैं ।

शरीर और परिवार के प्रति निरंतर आकर्षित रहने वाला पुरुष माया ग्रस्त है । लोभ और मोह की सीमा में अवरुद्ध व्यक्ति इंद्रियजन्य वासनाओं और लोभ जन्य तृष्णाओं में उलझा रहता है । उसका चिंतन और क्रिया-कलाप संग्रह एवं उपयोग की संकीर्ण स्वार्थपरता में लगा रहता है । इस मोहग्रस्त स्थिति से ऊँचे उठकर आदर्शों के प्रति जो अदम्य भावना उत्पन्न होती है वह ईश्वर-प्रेम है । जिसमें अपने सुखों को बाँट देने की, दूसरों के दु:खों को बँटा लेने की, सघन आत्मीयता मिश्रित करुणा और उदार परमार्थ परायणता की आकांक्षा उत्पन्न होती है, वही ईश्वर-प्रेम है । इसमें आत्मकल्याण के लिए आत्म परिष्कार की, गुण-कर्म-स्वभाव को उच्चस्तरीय बनाने की आकांक्षा भी जुड़ी रहती है । यह आत्म प्रेम भी ईश्वर प्रेम का ही एक स्वरूप है ।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

इन्हीं सब सत्प्रवृत्तियों को अंतःकरण की कोमलता कहते हैं, यही दिव्य प्रेम का स्वरूप है । ईश्वर परायण व्यक्ति को अपना मनःक्षेत्र इन्हीं दिव्य भावनाओं से ओत-प्रोत करना पड़ता है । ईश्वर प्रेम अथवा भगवत् भक्ति का यथार्थ स्वरूप यही है । वह भावोन्माद एवं कल्पनाओं की उड़ान से नहीं व्यावहारिक जीवन की उत्कृष्टता से संबंधित है । उसमें चिंतन और कर्तृत्व के दोनों क्षेत्र परिष्कृत करने पड़ते हैं ।

भक्त की इसी मनःस्थिति को ईश्वर के अनुग्रह का सर्वोत्तम प्रमाण माना गया है । उसी की आकांक्षा रामायण में की गई है-

ईश्वर-प्रेम की यथार्थता, सार्थकता और गहराई इसी मनःस्थिति में है । भगवान की सत्ता के प्रति असीम प्यार हो जिसके फलस्वरूप लोभ आदि से सहज विरति हो जाय । इसी मनोभूमि में भगवान का अवतरण होता है । रामायण के अंत में स्वयं तुलसीदास जी कामना करते हैं ।

कामिहिं नारि पियारि जिमि, लोभिहिं प्रिय जिमि दाम ।
तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहि राम ॥

सुतीक्ष्ण के प्रसंग में प्रभु की लीला होती है-

अतिशय प्रीति देखि रघुवीरा । प्रकटे हृदय हरन भव भीरा ॥

अवतार के प्रार्थना प्रसंग में शिवजी देवताओं को भगवान की प्राप्ति का मर्म समझाते हैं ।

हरि व्यापक सर्वत्र समाना । प्रेम ते प्रकट होहिं मैं जाना ॥
जाके हृदय भगति जस प्रीती । प्रभु तहँ प्रकट सदा यह रीती ॥

भगवान का अनुग्रह ऐसे ही प्रेमीजनों पर बरसता है जो अपनी अभिरुचि एवं आकांक्षाओं को ईश्वरीय प्रयोजनों में सर्वतोभावेन नियोजित करते हैं । ऐसे प्रेमियों को ही भक्त कहते हैं । गरुड़ को समझाते हुए काकभुशुंडि कहते हैं-

पुनि रघुबीरहि भगति पियारी ।

भगवान काकभुशुंडि से कहते हैं-

मोहि भगत प्रिय सतत, अस विचारि सुनु काग ।

शबरी को संबोधित करते हुए प्रभु कहते हैं-

कह रघुपति सुनि भामिनि बाता । मानों एक भगति कर नाता ॥

इसी संदर्भ में शिवजी का मत है-

रामहि केवल प्रेम पियारा । जानि लेहु जो जानन हारा ॥
मिलहि न रघुपति बिनु अनुरागा । किये जोग जप ध्यान विरागा ॥

जब ईश्वर भक्ति मन में उपजती है तो शरीर-सुख की लालसा, वासना और तृष्णा निरंतर मिटती रहती है, दूर हो जाती है और उनके स्थान पर तपश्चर्या का मार्ग अपना कर आत्म संयम एवं लोक मंगल के मार्ग पर चलते हुए प्रसन्नतापूर्व कष्ट उठाने को कदम बढ़ते हैं । यही तप-साधन का मार्ग भगवद्भक्ति के रूप में उपलब्ध होता है ।

पार्वती जी की तपस्या के प्रसंग में कहा गया है कि प्रेम उमड़ने पर शारीरिक कष्टों का महत्व नहीं रह जाता ।

नित नव चरन उपज अनुरागा । बिसरी देह तपहिं मन लागा ॥

भक्त की कोई कामना हो सकती हे तो एक ही कि उसे प्रभु का अनन्य प्रेम प्राप्त

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

हो । अर्थात ईश्वरीय प्रयोजनों की पूर्ति में उसका तन-मन-धन सदा लगा रहे । मात्र भक्ति का वरदान माँगना और निष्काम प्रीति करना, भौतिक कामनाओं को त्याग कर परमार्थ प्रयोजनों में लगना ही ईश्वरीय प्रेम का वास्तविक स्वरूप है ।

जब काकभुशुंडि विराट रूप का दर्शन कर चुके तो प्रभु उनको समझाते हुए ऐसी ही भक्ति का उद्बोधन करते हैं-

सुचि सुसील सेवक सुमति, प्रिय कहु काहि न लाग ।
श्रुति पुरान कह नीति अस, सावधान सुनु काग ।।
एक पिता के विपुल कुमारा । होहिं पृथक गुन सील अचारा ।।
तिन्ह महँ जा परिहरि मद माया । भजै मोहि मन बच अस काया ।।
सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना । यद्यपि सो सब भाँति अमाना ।।
अखिल विस्व यह मोर उपाया । सब पर मोहि बराबर दाया ।।
सत्य कहहुँ खग तोहि, सुचि सेवक मम प्रान प्रिय ।
अस विचारि भजु मोहि, परिहरि आस भरोस सब ।।

श्री काकभुशुंडिजी गरुड़ को भक्ति का मार्ग समझाते हुए भगवान का स्वभाव बताते हैं कि भगवान के लिए न कोई प्रिय है और न अप्रिय । उन्हें न किसी से राग है, न द्वेष । उन पर न किसी के पाप का उत्तरदायित्व है, न पुण्य का । लोग स्वेच्छापूर्वक कार्य करते हैं और उन्हीं बोये हुए बीजों के मीठे-कडुए फल खाते हैं । तो भी जिनके हृदय में भक्ति या अभक्ति है उसके हृदय में वैसा ही सम-विषम न्यूनाधिक उनका निवास रहता है-

जद्यपि सम नहिं राग न रोषू । गहइ न पाप पुण्य गुन दोषू ।।
करम प्रधान विस्व करि राखा । जो जस करइ सो तस फल चाखा ।।
तदपि करहि सम विषम विहारा । भगत अभगत हृदय अनुसारा ।।

इसीलिए मर्मज्ञ लोग केवल भगवान का प्रेम, उनकी भक्ति ही उनसे माँगते हैं । बालि जब अपनी भूल स्वीकार करता और भगवान उसके शरीर को अक्षय करने का प्रस्ताव करते हैं, तो वह कहता है-

अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो वर माँगहूँ ।
जेहि जोनि जन्मों कर्म बस तहँ राम पद अनुरागहूँ ।।

सुग्रीव भी भगवान का प्रताप देखकर अपनी लौकिक आकांक्षाएँ भूल जाता है और माँगता है-

अब प्रभु कृपा करहुँ एहि भाँती । सब तजि भजन करहुँ दिन राती ।।

भगवान की कृपा प्राप्त करने का मर्म भी यही है । शिवजी पार्वतीजी को समझाते हैं-

उमा जोग जप दान तप, नाना मख व्रत नेम ।
राम कृपा नहिं करहिं तस, जस निष्केवल प्रेम ।।

उक्त दोहे में 'निष्केवल प्रेम' भक्ति की अनन्य निष्ठा का प्रतीक है । तुलसीदास जी उसी स्तर की निष्ठा व्यक्त करते हुए दोहावली में लिखते हैं-

एक भरोसो एक बल, एक आस विस्वास ।
एक श्याम घन श्याम हित, चातक तुलसीदास ।।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

चातक या तो मेघ जल पीता है या प्यासा रहता है । भक्त को भी एकमात्र ईश्वर का विश्वास रहता है और वह किसी भी स्थिति में उसका पल्ला नहीं छोड़ता, अनुसरण नहीं त्यागता ।

सच्चे भक्त की प्रीति भी चातक की तरह उच्च स्तरीय होती है । उसे विश्वास है कि बादल उससे सच्चा प्रेम करते हैं । इसलिए यदि वे पानी नहीं दते या कम देते हैं प्यास रखते हैं, तो इसमें हर्ज नहीं । बाहर वालों से लोक व्यवहार रखना पड़ता है इसलिए उनको अधिक देना-लेना पड़ता है । घर के लोग तो कुछ कम लें या कष्ट में रहें तो भी हर्ज नहीं, ऐसा विचार आत्मीयों के प्रति रहता है । बादल अन्यत्र बरसते हैं पर चातक को प्यासा रहना पड़ता है तो वह इसी प्रकार अपने मन को संतोष देता है और बादलों के स्नेह में किसी प्रकार की कमी होने की आशंका नहीं करता । दोहावली में संत तुलसी लिखते हैं-

चढ़त न चातक चित कबहुँ, प्रिय पयोद के दोष ।
तुलसी प्रेम पयोधि की, तासे नाप न जोख ॥

भरत जी में भी यही चातक-वृत्ति देखने को मिलती है । जब अयोध्या आये और देखा कि लक्ष्मण जी राम के साथ चले गए हैं, उन्हें वह सौभाग्य नहीं मिला तो इस पर पश्चात्ताप करते हुए भरत आत्मनिरीक्षण करते हैं और सोचते हैं कि इसमें मेरी ही त्रुटियाँ कारण रहीं होंगी ।

अहह धन्य लक्ष्मण बड़भागी । राम पदारबिन्द अनुरागी ॥
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा । ताते नाथ संग नहिं लीन्हा ॥

भक्त अपने किसी कष्ट और अभाव का दोष भगवान को नहीं देता, अपना ही दोष मानता है । 'विनय-पत्रिका' में यही भाव इस प्रकार है-

हे प्रभु मेरोई सब दोषु ।
वेष वचन विराग मन अघ अवगुननि को कोषु ।
राम प्रीति प्रतीति पोली, कपट करतब ठोस ॥

अर्थात "प्रभु मेरा ही प्रेम खोखला है और कपट आचरण ठोस है । वैराग्य केवल वचन तक है, मन में पाप ही भरा है । इसलिए नियमानुसार दंड भोग का कारण मैं ही हूँ ।"

और केवल ऊपर दिखावा, वचन और वेष से भक्ति नहीं की जा सकती । भगवान से संबंध तो अंतःकरण से होता है । यह तथ्य दोहावली में स्पष्ट प्रकट किया गया है-

वेष विसद बोलनि मधुर, मन कटु करम मलीन ।
तुलसी राम न पाइये, भये विषय जल मीन ॥

वचन वेष से जो बनै, सो बिगरे परिनाम ।
तुलसी मन ते जो बनै, बनी बनाई राम ॥

सांसारिक कामनाओं के ज्वार-भाटे जब तक मन में उठते रहते हैं तब तक मनरूपी समुद्र स्थिर नहीं रह पाता और उसमें सूर्य-चंद्र के प्रतिबिम्ब दिखाई नहीं पड़ते । कामनाग्रस्त मन हर समय मृग-तृष्णाओं में भटकता रहता है, फलतः न उसे

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

शांति मिलती है और न एकाग्रता उपलब्ध होती है । लोभी मन की प्रवृत्ति कामनाओं में डूबी रहती है । वह भजन भी भौतिक सम्पदाएँ पाने अथवा विपत्तियों से छूटने के लिए करता है, लक्ष्य सांसारिक सुख रहता है । उसके उपाय मात्र के लिए पूजा-उपासना का सहारा लेता है । उसकी मन:स्थिति में भक्ति के वास्तविक तत्व रहते ही नहीं, जिससे प्रभु का अनुग्रह उसे प्राप्त हो सके ।

ईश्वर भक्ति का अर्थ है इस विराट विश्व की सेवा-साधना के लिए आदर्शवादी रीति-नीति को अपनाना, परमार्थ-परायण होना और मानव-जीवन के साथ जुड़े हुए आदर्श कर्तव्यों का निष्ठापूर्वक पालन करना । यह तभी संभव हो सकता है जब मनुष्य भौतिक कामनाओं की गगनचुम्बी तृष्णा को मन से हटाये । सादा जीवन उच्च विचार की नींव अपनाये । शरीर यात्रा एवं कुटुंब पालन की स्वल्प श्रम से पूरी हो सकने वाली आवश्यकताओं को पूरा करते रहने भर से संतुष्ट रहे और शेष बची हुई सारी विभूतियाँ ईश्वरीय प्रयोजन में लगाये । समय, श्रम, मनोयाग, बुद्धि-कौशल, प्रतिभा, सम्पत्ति आदि सम्पदाएँ तभी महान प्रयोजनों में लगाई जा सकती हैं जब व्यक्तिगत भौतिक आकांक्षाओं को स्वल्प रखा जाय । इसी शांत मन:स्थिति का निर्माण करना ईश्वर भक्त के लिए आवश्यक होता है । उसे अपनी कामनाओं के उभार शांत करने होते हैं और ईश्वरीय अनुग्रह के रूप में मिलने वाली निष्कामता, कर्तव्य परायणता की आराधना करनी पड़ती है ।

शिवजी पार्वती जी को यह मर्म बतलाते हैं कि श्रेष्ठ आचरण, विवेक, संयम आदि द्वारा भक्ति प्राप्त हो सकती है ।

तीर्थाटन साधन समुदाई । जोग बिराग ग्यान निपुनाई ॥
नाना कर्म धर्म ब्रत नाना । संजम दम जप तप मख दाना ॥
भूतदया द्विज गुरु सेवकाई । बिद्या बिनय बिबेक बड़ाई ॥
जहँ लगि साधन बेद बखानी । सब कर फल हरि भगति भवानी ॥

मन सांसारिक कामनाओं से मुड़कर भगवान की ओर लग जाय, यही सच्ची भक्ति-भावना का प्रमाण है । 'विनय-पत्रिका' में यह मत व्यक्त करते हुए तुलसीदास जी प्रभु से कहते हैं-

तुम अपनायो तब जानि हौ जब मन फिरि परि है ।
सुत की प्रीति, प्रतीति मीत की नृप ज्यों डर डरि हैं ॥
हरषि है न अति आदरे निदरे न जरि मरि है ।
हानि लाभ सुख दुख सबै सम चित हित अनहित ।
कलि कुचालि परिहरि है ।

ऐसा होना भक्त के लिए कठिन नहीं । जब भगवत्-प्रेम अंत:करण में प्रतिष्ठापित होता है तो सांसारिक आकर्षण फीके लगने लगते हैं और उनकी ओर से सहज ही अरुचि हो जाती है । तुलसीदास जी आत्म विश्लेषण करते हुए अपने आपसे पूछते हैं कि यदि मुझे सचमुच भगवान से प्रेम होता तो निश्चय ही संसार के आकर्षणों की ओर से अरुचि हो जाती ।

जो मोहि राम लागते मीठे ।
तौ षट रस नव रस अनरस सब ह्वै जाते अति सीठे ॥

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

भक्त की आकांक्षा एक नई दुनिया, एक नई बस्ती बसाने की होती है । वह षडरिपुओं से घिरी बस्ती को छोड़ना चाहता है और सद्‌गुणो रूपी सज्जनों को बुलाकर एक नई बस्ती का निर्माण करना चाहता है और उन्हीं के निवास करने की आकांक्षा करता है । एक पुराने खंडहर को छोड़कर नया ग्राम बसाने और उसमें रहने की भावना उसके मन में निरंतर उमँगती रहती हैं ।

मैं तुम्हरो लेइ नाम ग्राम, इक उर आपनौ बसावों ।
भजन बिबेक बिराग लोग भले मैं क्रम करि ल्यावों ॥

ऐसे भावानाशील सत्कर्म परायण व्यक्ति भगवान को प्यारे हैं । उन्हीं पर प्रभु का अनुग्रह बरसता है । ऐसे लोग ही ईश्वर प्राप्ति, ईश्वर दर्शन और ईश्वर अनुग्रह का लाभ प्राप्त करते हैं ।

भक्त और भगवान का संबंध

भगवान की आराधना भक्ति-भावना से होती है । भक्ति का अर्थ है प्रेम । भगवत-प्रेम को अंतरात्मा के कण-कण में बसा लेने से भगवत उद्देश्य ही जीवन का उद्देश्य बन जाता है । सारी अभिरुचि उधर ही ढल जाती है । इस स्तर के अंत:करण में उच्चकोटि की भावनाएँ उमँगती रहती हैं, उसी प्रकार के विचारों और कार्यों में संतोष होता है । लोक व्यवहार एवं कर्तव्य पालन की दृष्टि से सांसारिक काम तो सतर्कता पूर्वक दिए जाते हैं, किन्तु हृदय में भगवान और उनका स्वरूप तथा निर्देश ही भरा रहता है । इसी का नाम सच्चा भगवत-प्रेम है ।

ईश्वर भक्त को ईश्वर सदृश्य श्रेष्ठ आदर्शयुक्त होना चाहिए, मानो दूसरा भगवान ही हो । राम और भरत की जोड़ी ऐसी लगती थी मानों दोनों एक ही साँचे में ढले हों । चित्रकूट निवासियों ने राम और भरत की एकरूपता, समस्वरता को देखा और आश्चर्यचकित रह गए । दोनों की आकृति और आत्मीयता अनिर्वचनीय प्रतीत होती थी ।

भरत राम ही की अनुहारी । सहसा लखि न सकहिं नर नारी ॥

प्रेम एक पक्षीय होना चाहिए, उसमें दूसरे पक्ष द्वारा तदनुरूप बदला देने की कामना नहीं होनी चाहिए । भरत सोचते हैं कि जो भगवान द्वारा दिया जा रहा है वह पर्याप्त है । यदि त्याग दिया गया हूँ तो वह भी उचित है क्योंकि मेरी मलिनता इसी योग्य थी । यदि वे मेरा सम्मान करते हैं तो यह भी उचित है क्योंकि वे सुस्वामी हैं । उन्हें अपने अनन्य सेवक का ध्यान रखना चाहिए । भक्त को न कोई उलाहना देना पड़ता है और न शिकायत करनी पड़ती है कि भगवान ने यह नहीं किया, वह नहीं दिया । वह तो मात्र अपनी भावना और कार्य पद्धति को उत्कृष्ट बनाये रहने में ही भक्ति की पूर्णता मान लेता है । और इतने में ही पूर्ण संतुष्ट रहता है । भरत की अभिव्यक्ति इसी प्रकार की है ।

भरत जी श्रीराम के पास चित्रकूट जाने के लिए तैयार हुए पर बदले में वे किसी सम्मान की आशा नहीं करते, मान-अपमान दोनों उन्हें स्वीकार हैं-

जौं परिहरिहि मलिन मन जानी । जो सनमानहिं सेवक जानी ॥
मोरे सरन राम की पनहीं । राम सुस्वामि दोसु सब जनहीं ॥

यही भाव तीर्थराज प्रयाग में उन्होंने व्यक्त किया है । वे तीर्थराज से माँगते हैं कि मुझे चाहे राम सहित सारा विश्व बुरा कहे, पर मेरे मन से प्रभु भक्ति कम न हो ।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

राम कुटिल कर जानहिं मोही । लोग कहहिं गुरु साहब द्रोही ॥
सीताराम चरन रति मोरे । अनुदिन बढ़हिं अनुग्रह तोरे ॥

उन्हें संसार से लेकर मोक्ष तक की कोई कामना प्रभु प्रेम से विचलित नहीं कर सकती ।

अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहउँ निरबान ।
जनम जनम रति राम पद, यह बरदान न आन ॥

चित्रकूट में राजा जनक भरत की निष्काम भक्ति की सराहना करते हुए देवी सुनयना से कहते हैं–

परमारथ स्वारथ सुख सारे । भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे ॥

इसी भावना का प्रतिफल था कि भगवान भरत का सतत स्मरण करते थे । भरद्वाज जी इस तथ्य को प्रकट करते हुए भरतजी से कहते हैं–

जानेऊ मरम नहात प्रयागा । मगन होत तुम्हरे अनुरागा ॥
राम लखन सीतहिं मन प्रीती । निशि सब तुम्हहिं सराहत बीती ॥

यही प्रेम लक्ष्य करके मानकार की टिप्पणी है–

भरत सरिस को राम सनेही । जग जप राम राम जप जेही ॥

यही नहीं भरत को वे राम से भी अधिक महत्व देते हुए कहते हैं–

सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं । उदासीन तापस बन रहहीं ॥
सब सुकृतन कर सुफल सुहावा । राम लखन सिय दर्शन पावा ॥
तेहि फल करि फल दरस तुम्हारा । सहित प्रयाग सुभाग हमारा ॥

भरत की यह उक्तियाँ और ऋषि द्वारा उनका मूल्यांकन केवल कथन ही नहीं थे । भरत के अयोध्यावास के प्रसंग में उनका प्रत्यक्ष प्रमाण सबको मिला । राम जिस प्रकार रहते हैं भरत भी उसी प्रकार का संयम और जीवनक्रम अपनाते हैं, भगवान की उदात्त रीति–नीति ही भक्त को अपनानी पड़ती है–

जटाजूट सिर मुनि पट धारी । महि खनि कुस साँथरी सँवारी ॥
असन बसन बासन ब्रत नेमा । करत कठिन रिषि धरम सप्रेमा ॥
भूषन बसन भोग सुख भूरी । तन मन बचन तजे तिन तूरी ॥
अवध राजु सुरराजु सिहाई । दसरथ धन सुनि धनदु लजाई ॥
तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा । चंचरीक जिमि चंपक बागा ॥
रमा विलास राम अनुरागी । तजत वमन जिमि जन बड़भागी ॥
राम प्रेम भाजन भरतु, बड़े न ऐहिं करतूति ।
चातक हंस सराहियत, टेंक विवेक विभूति ॥

भरत को संसार का आकर्षण नहीं रहता । उसे तो सारे रिश्ते भगवान में ही दीखते हैं । और इसी नाते वह संसार के प्रति अपने कर्तव्य भी पूरे करता है । परिवार के मोह में फँस कर वह प्रभु से दूर या विमुख नहीं होते । लक्ष्मण जी राम वनगमन के समय भगवान के साथ चलने का आग्रह करते हुए यही भाव व्यक्त करते हैं–

गुरु पितु मातु न जानौं काहू । कहौं सुभाउ नाथ पतिआहू ॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई । प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई ॥
मोरे सबइ एक तुम स्वामी । दीनबन्धु उर अन्तरजामी ॥

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

लक्ष्मण जी जैसी भावना हर भक्त के लिए स्वाभाविक है । अयोध्यावासी नर-नारी भी अपने भोग-वैभव छोड़कर राम के साथ वन जाने को निकल पड़े । तब तुलसीदास जी भाव व्यक्त करते हैं कि-

राम चरन पंकज प्रिय जिनहीं । विषय भोग बस करहिं कि तिनहीं ॥

भक्त को राग और क्रोध जीतकर नीति मार्ग पर चलना आवश्यक है । इस संबंध में तुलसीदास जी 'दोहावली' में लिखते हैं-

राम भगति पथ नीति मग, चलिय राग रिस जीति ।
तुलसी संतन के मते, यही भगति कै रीति ॥

'दोहावली' में यही भाव व्यक्त करते हुए लिखा गया है-

जहाँ राम तहँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम ।
तुलसी कबहूँ होत नहिं, रवि रजनी इक ठाम ॥

'रामचरितमानस' में ऐसे भक्तों के उदाहरण स्थान-स्थान पर मिलते हैं । भक्त सुतीक्ष्ण ईश्वर से कभी कोई वरदान नहीं माँगता क्योंकि उसे पता ही नहीं कि उसके लिए क्या उपयोगी है और क्या अनुपयोगी । क्या सच और क्या झूठ ।

मुनि कह मैं बर कबहुँ न जाँचा । समुझि न परइ झूठ का साँचा ॥

ऋषि सरभंग अपनी सारी साधना को प्रभु-प्रेम के लिए उनके चरणों पर चढ़ा देते हैं ।

जोग जग्य जप तप ब्रत कीन्हा । प्रभु कहुँ देह भगति वर लीन्हा ॥

ऋषि अगस्त्य जी भी यही मर्म जानते हैं और भगवान से सांसारिक वस्तुएँ न माँगकर उनके प्रति अपने अंतःकरण में अविरल भक्ति चाहते हैं ।

यह वर माँगों कृपा निकेता । बसहु हृदय श्री अनुज समेता ॥
अविरल भगति विरति सत्संगा । चरन सरोरुह प्रीति अभंगा ॥

भक्तराज हनुमान भी जानते हैं कि सांसारिक पदार्थ तो दुःखमूल है, वह पुरुषार्थ से मिल सकते हैं । भगवान की भक्ति और उनका प्रेम ही दुर्लभ है ।

नाथ भगति अति सुख दायिनी । देहु कृपा करि अनपायनी ॥

भगवान जटायू को उसके बलिदान के बदले में कुछ माँगने को कहते हैं तो वह यही कहता है कि प्रभु ! आपके प्रेम के लिए ही मैंने जो कुछ बन पड़ा, किया अब यह भाव सदा मेरे अंतःकरण में बना रहे-

अविरल भगति माँगि वर, गीध गयउ निज धाम ।

भगवान की भक्ति पाकर मनुष्य आप्तकाम हो जाता है, उसकी अवांछनीय कामनाएँ नष्ट हो जाती हैं और जो उचित हैं, वे कर्तव्य से संबंधित होने के कारण सहज ही पूरी होती रहती हैं । केवट भगवान का अनुग्रह पाने के उपरांत ऐसा ही अनुभव करता है-

नाथ आज मैं काह न पावा । मिटे दोष दुख दरिद नसावा ॥

केवट अपने नगण्य साधनों को भगवान की सेवा में लगाकर अपने को धन्य मान लेता है और कोई कामना शेष नहीं रह जाती ।

अब कछु नाथ न चाहिय मोरे । दीन दयालु अनुग्रह तोरे ॥

भक्त भगवान की कर्म व्यवस्था के परिणाम भोगने के लिए तैयार रहता है ।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अपने प्रेम के बदले यह नहीं चाहता कि उसके कुकर्म क्षमा कर दिए जावें । बस यही भावना रखता है कि उसे भोग भोगने के लिए कहीं भी जाना पड़े प्रभु की कृपा का आभास बना रहे । 'विनय-पत्रिका' के पद में यह मार्मिक भाव इस प्रकार दिए गए हैं-

यह बिनती रघुवीर गुसाई ।
चहौं न सुगति सुमति संपति कछु, रिधि सिधि विपुल बड़ाई ।
हेतु रहित अनुराग राम पद, बढ़ै अनुदिन अधिकाई ॥
कुटिल कर्म लै जाहिं मोहि जहँ जहँ अपनी बरियाई ।
तहँ तहँ जनि छिन छोह छाँड़ियो, कमठ अंड की नाई ॥

तुलसीदास जी तो और भी एक कदम आगे बढ़ जाते हैं । वे भक्ति भी नहीं माँगते, केवल ऐसी प्रेरणा माँगते हैं जिसके आधार पर श्रेष्ठ जीवन क्रम अपना कर भक्ति के अधिकारी बन सकें । 'विनय-पत्रिका' में वे कहते हैं-

"कभी भगवान की कृपा से मैं संत स्वभाव ग्रहण करूँगा । जो कुछ मिल जाय उसी में संतोष, कभी किसी से कुछ न माँगना, सदैव मन, वाणी और कर्म से परोपकार में लगे रहना, यम-नियमों का पालन, कठोर वाणी सुनकर भी क्रोधित न होना, अभिमान रहित, सबमें समत्व बुद्धि, शांत मन, दूसरों के दोष न देखकर गुण देखना, शरीर संबंधी चिंता छोड़कर सुख और दुःख को सहना आदि संतों के गुणों को धारण करके ही मैं अविचल हरिभक्ति पा सकता हूँ ।"

कबहुँक हों यहि रहनि रहौंगो ।
श्री रघुवीर कृपालु कृपातें संत सुभाव गहौंगो ॥
जथा लाभ, संतोष सदा, काहू सौं कछु न चहौंगो ।
पर हित निरत निरंतर, मन क्रम बचन नेम निबहौंगो ॥
परुष बचन अति दुसह श्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो ।
बिगत मान सम सीतल मन, पर गुन नहिं दोष कहोंगो ॥
परिहरि देह जनित चिंता, दुख सुख समबुद्धि सहौंगो ।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अबिचल हरि-भगति लहौंगो ॥

भक्त-भगवान का संबंध अनोखा है । भक्त के मन में विकार भी है तो वह प्रभु को बता देता है और भगवान भी भक्त की दुष्प्रवृत्तियों का निवारण करते हैं । गलत चाहों को पूरा नहीं करते । कामनाओं की पूर्ति नहीं उनका शोधन ही प्रभु-अनुग्रह का सच्चा प्रमाण है । नारद-मोह प्रसंग में यह स्पष्ट है-

नारदजी को अपने द्वारा काम-विजय का अहंकार हो गया । भगवान ने इसे जाना तो विचार किया-

करुनानिधि मन दीखि विचारी । उर अंकुरेऊ गरब तरु भारी ॥
सेवक सौं मैं डारिहउँ उखारी । पन हमार सेवक हितकारी ॥

भगवान ने माया के प्रभाव से उन्हें मोहित किया । वे विश्वमोहिनी को पाने के लिए आतुर हो उठे । किन्तु भगवान के प्रति विश्वास बना रहा । वे सोचने लगे-

मोरे हित हरि सम नहिं कोऊ । ऐहि अवसर सहाय सोइ होऊ ॥

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

भगवान से अपनी इच्छा व्यक्त की, परंतु निर्णय उन्हीं के हाथों में सौंप दिया ।

जेहि विधि होइ नाथ हित मोरा । करहु सो बेगि दास मैं तोरा ॥

भगवान ने भी उनकी निष्ठा देखी । उनके विकारों के ही शमन का निश्चय किया और कहा—

जेहि विधि होइ परम हित, नारद सुनहु तुम्हार ।
सोइ हम करब न आन कछु, वचन न मृषा हमार ॥

और स्पष्ट कह भी दिया कि रोगी कुपथ्य माँगे तो भी वैद्य नहीं देता, वैसे ही तुम्हारा हित मैं करूँगा ।

कुपथ माँगु रूज व्याकुल रोगी । वैद न देहि सुनहु मुनि जोगी ॥
एहि विधि हित तुम्हार मैं ठयऊँ । कह अस अन्तरहित प्रभु भयऊ ॥

उन्होंने माँगा था सुंदर रूप किन्तु भगवान ने उन्हें कुरूप कर दिया । उनकी रुचि नहीं हित की रक्षा की ।

मुनि हित कारन कृपा निधाना । दीन्ह कुरूप न जाइ बखाना ॥

स्वयंवर में अपमानित होकर नारद क्रुद्ध भी हुए पर प्रभु ने बुरा न माना । नारद जी ने बाद में (अरण्यकांड में) प्रभु से उनके विवाह में विघ्न डालने का कारण पूछा तो उन्होंने समझाया कि वे भक्त की रखवाली माता की तरह करते हैं । माँ बच्चे को साँप अथवा अग्नि की तरफ जाने से रोकती ही है ।

करउँ सदा तिन कै रखवारी । जिमि बालक राखइ महतारी ॥
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई । तहँ राखइ जननी अरगाई ॥

भगवान ने नारद को बतलाया कि नारी को प्रमदा-कामिनी रूप में देखना अहितकारी है, अतः उन्हें उससे दूर रखा है—

अवगुन मूल सूलप्रद, प्रमदा सब दुख खानि ।
ताते कीन्ह निवारन, मुनि मैं यह जिय जानि ॥

भगवान के इस स्वभाव और प्रभाव को समझकर तुलसीदास जी 'विनय-पत्रिका' में यही प्रार्थना करते हैं कि हमारे भी दोष हर लीजिए ।

कबहुँ रघुवंश मनि सो कृपा करहुगे ।
मोह मद मान कामादि खल मंडली ।
सकुल निरमूल करि दुसह दुख हरहुगे ॥

अन्य पद में वे व्यक्त करते हैं कि यह सब विकार प्रभु की कृपा से अवश्य हट जायेंगे ।

जो मन लागै रामचरन अस ।
देह गेह सुत वित कलत्र महँ मगन होत बिनु जतन किये जस ।
द्वंद्व रहित, गतमान, ग्यानरत, विषय विरत खटाइ नाना कस ॥
सुखनिधान सुजान कोसलपति है प्रसन्न, कहुँ क्यों न होहि बस ।
सर्वभूत-हित निर्ब्यलीक चित, भगति प्रेम दृढ़ नेम, एकरस ॥
तुलसिदास यह होइ तबहिं जब द्रवैईश, जेहि हतो सीसदस ।

इतना ही नहीं प्रभु ने सचमुच अपनाया या नहीं इसकी कसौटी वे नहीं मानते हैं कि मन कुमार्ग छोड़कर सन्मार्ग पर चल पड़े ।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

तुम अपनायो तब जानिहौं जब मन फिर परि है ।
जेहि सुभाव विषयनि लग्यो, तेहि सहज नाथ सो
नेह छाँड़ि छल करि है ॥
सुत की प्रीति, प्रतीति मीत को, नृप ज्यों डरि है ।
अपनो सो स्वारथ स्वामिसों, चहुँ विधि चातक ज्यों
एक टेक ते नहिं टरि है ॥
हरषि हैं न अति आदरे, निदरे न जरि मरि है ।
हानि लाभ दुख सुख सबै समचित हित अनहित
कलि कुचालि परिहरि है ॥
प्रभु गुन सुनि मन हरषि है, नीर नयननि ढरि है ।
तुलसिदास भयो राम को, विश्वास प्रेम लखि
आनंद उमगि उर भरि है ॥

भगवान और भक्त का संबंध ऐसा ही निश्चल है । निर्मल मन से ही सच्ची भक्ति हो सकती है । सत्कर्म परायण भक्त ही ईश्वर को प्राप्त कर सकता है । प्रभु अनुग्रह का प्रतिफल उज्ज्वल चरित्र के रूप में देखा जा सकता है । यह तथ्य भगवान स्वयं सखा विभीषण को बतलाते हैं ।

निर्मल मन जन सो मोहि पावा । मोहि कपट छल छिद्र न भावा ॥

विभीषण भी इस मर्म को जानते और अपनी निष्ठा व्यक्त करते हुए कहते हैं–

करम बचन मन छाँड़ि छल, जब लगि भजन तुम्हार ।
तब लगि सुख सपनेहुँ नहीं, किये कोटि उपचार ॥

इसी विश्वास के सहारे विभीषण शत्रुपक्ष में होते हुए भी भगवान के पास निर्भय होकर जा सके । उन्हें विश्वास था कि–

मन क्रम बचन छाँड़ि चतुराई । भजत कृपा करहहिं रघुराई ॥

विभीषण ने लंका का राज्य मिलने पर भी अपनी इस निष्ठा का परिचय दिया । भगवान के चरणों में सभी सम्पत्ति सौंपते हुए कहा–हे प्रभु ! इसे स्वीकार करें और वानरों के अर्थात् सदुद्देश्य के लिए इसे खर्च कर डालें ।

देखि कोष मंदिर संपदा । देहु कृपालु कपिन्ह कहुँ मुदा ॥
सब बिधि नाथ मोहि अपनाइय । पुनि मोहि सहित अवधपुर जाइय ॥

नवधा भक्ति के प्रसंग में नौवीं भक्ति का रूप बताते हुए कहा गया है कि छल रहित सादगी और हर्षोन्माद भरे अहंकार तथा हानि पराजय की दीनता को छोड़कर जो संतुलित मनःस्थिति बनती है वही सच्ची भक्ति का रूप है ।

नवम सरल सब सन छल हीना । मम भरोस हिय हरष न दीना ॥

इसीलिए तुलसीदास जी 'विनय पत्रिका' में प्रभु के प्रति पत्नी जैसे समर्पण भाव व्यक्त करते हैं–

रावरो भरोसो नाह कै सुप्रेम नेम लियो ।
रुचिर रहनि रुचि मति गति तीय की ॥

इसी पद में कहा गया है कि अंतर्यामी के पास दुरंगी चाल नहीं चल सकती ।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

ग्यान हू गिरा के स्वामी बाहर अन्तर्यामी ।
यहाँ क्यों दुरैगी बात मुख अरु हीय की ॥

मन प्रभु से छल न करे इसलिए उसे सावधान करते हुए अन्य पद में कहा है–

सेवा सावधान तू सुजान समरथ साँचो
सद्‌गुन धाम राम पावन परम ।
सुरुख सुमुख एकरस एक रूप तोहि
विदित विशेष घट घट के मरम ॥

मानसकार मन से छल-कपट को निकाल देने की विद्वता और शौर्य का प्रमाण मानते हैं । काकभुशुंडिजी गरुड़ से कहते हैं–

सोई कवि कोविद सोइ रनधीरा । जो छल छाँड़ि भजइ रघुबीरा ॥

इसी तथ्य को वे अन्य स्थान में और भी स्पष्ट करते हैं–

विरति चर्म असि ज्ञान मद, लोभ मोह रिपु मारि ।
जय पाइय सो हरि भगति, देखु खगेस विचारि ॥

ऐसे भक्तों को भगवान अपना परम प्रिय मानते हैं । भगवान का निवास किस स्तर के भक्तों के मन में होता है उसकी चर्चा 'रामायण' में इस प्रकार आती है, अरण्यकांड में भगवान लक्ष्मण जी से कहते हैं–

काम आदि मद दंभ न जाके । तात निरन्तर बस मैं ताके ॥

इसी प्रसंग में भगवान इस तथ्य को दूसरे शब्दों में दुहराते हैं–

बचन कर्म मनमोहि गति, भजन करहिं निष्काम ।
तिनके हृदय कमल महँ, करहुँ सदा विश्राम ॥

उत्तरकांड में पुन: श्रीराम जी वही भाव दुहराते हैं–

समदरसी इच्छा कछु नाहीं । हरष सोक भय नहिं मन माहीं ॥
अस सज्जन मम उर बस कैसे । लोभी हृदय बसइ धन जैसे ॥

भक्त के हृदय में पाप नहीं रहते अथवा पापी से भक्ति नहीं हो सकती । दोनों बातें एक ही हैं । भक्ति से मन की मलिनता धुल जाती है अथवा निर्मल मन से ही भक्ति संभव है । ये दोनों तथ्य अन्योन्याश्रित हैं । मन की मलिनता का हटना, दोष-दुर्गुणों से मुक्ति मिलना, भक्ति के हृदय में प्रवेश करने का एकमात्र प्रमाण है ।

विभीषण प्रभु की शरण गया तब सुग्रीव ने उसकी सद्‌भावना पर शक करते हुए कहा था–'जानि न जाय निशाचर माया । काम रूप केहि कारण आया ॥' तब भगवान निराकरण करते हुए कहते हैं–

जो पै दुष्ट हृदय सोइ होई । मोरे सन्मुख आव कि सोई ॥

उसी प्रसंग में भगवान और स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं–

पापवन्त कर सहज सुभाऊ । भजन मोर तेहि भाव न काऊ ॥

उत्तरकांड में गरुड़ जी से यही मर्म काकभुशुंडि जी कहते हैं–

काम क्रोध मद लोभ रत, गृहासक्त दुखरूप ।
ते किमि जानहिं रघुपतिहिं, मूढ़ परे तम कूप ॥

'लंकाकांड' में रावण भी अपनी इस मजबूरी को स्वीकार करता है–

होहिंहि भजन न तामस देहा । मन क्रम वचन मंत्र दृढ़ नेहा ॥

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

कारण यह कि मन में दुर्भावना होने से भक्ति की निर्मलता पैदा हो ही नहीं सकती । काकभुशुंडि जी यह सिद्धांत स्पष्ट करते हुए कहते हैं–

छूटय मल कि मलहि के धोये । घृत कि पाव कोइ वारि बिलोये ॥
प्रेम भगति जल बिनु खगराई । अभ्यन्तर मल कबहुँ न जाई ॥

तुलसीदास जी के अन्य पदों में भी यही अभिरुचि झलकती है कि जब तक दोष–दुर्गुण मन में भरे रहते हैं तब तक भगवान किसी को अपनाते नहीं । 'विनय पत्रिका' में यह भाव प्रकट करते हुए वे लिखते हैं–

जेहि गुन ते बस होहु रीझि कर
सो मोहि सब बिसर्‌यौ ॥

अस्तु भविष्य के लिए अपने मन को सावधान करते हुए वे कहते हैं–

जो मन भज्यो चहै हरि सुरतरु ।
तौ तज विषय विकार सार भज, अजहूँ
जो मैं कहौं सोइ करु ।
सम, संतोष, विचार विमल अति सतसंगति
ये चारि दृढ़ करि धरु ।
काम क्रोध अरु लोभ मोह मद राग द्वेष
निसेष करि परिहरु ।
श्रवन कथा, मुख नाम हृदय हरि सिर प्रनाम
सेवा कर अनुसरु ॥
नयननि निरखि कृपा समुद्र हरि अग जग
रूप भूप सीता वरु ।
इन्हैं भक्ति, वैराग्य ग्यान यह हरि तोषन यह
शुभ ब्रत आचरु ।
तुलसिदास शिव मत मारग यदि चलत सदा
सपनेहुँ नाहिन डरु ॥

जो दोष–दुर्गुणों से भरे हुए हैं और पूजा–पाठ के आधार पर ही राम–भक्त होने का दावा करते हैं, उन पर व्यंग्य करते हुए तुलसीदास जी ने कथा के प्रारंभ में ही कहा है–

बंचक भगत कहाइ राम के । किंकर कंचन कोह काम के ॥

यही भाव 'विनय पत्रिका' के निम्न पद में व्यक्त किया गया है–

गोपद बुड़िवे जोग करम करौं बातनि जलधि थहावौं ।
अति लालची काम किंकर मन मुख रावरो कहावौं ॥

अन्य पद में आत्म–पश्चात्ताप करते हुए प्रभु से विनय करते हैं कि चाहे आप मुझे सुधार लें अथवा मार डालें, मैं आपकी और अपनी मर्यादा का ध्यान रखकर बार–बार आग्रह नहीं करूँगा ।

दूरि कीजै द्वार तै लवार लालची प्रपंची
सुधा सो सलिल सूकरा ज्यौं गहडोरिहौं ।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

राखिये नीके सुधारि नीच को डारिये मारि ।
दुहूँ ओर की विचारि अब न निहोरिहौं ॥

सच्चे भक्त अपनी तथा प्रभु की इस मर्यादा और गौरव को समझते हैं । अपने अंतर की मलिनता से उन्हें लज्जा आती है । तुलसीदास जी 'विनय पत्रिका' में यही भाव व्यक्त करते हैं-

"हे प्रभु ! मुझे आपका दास (भक्त) कहलाने में लाज क्यों नहीं आती ? मैं आपको अपने हृदय सरोवर में बसाना चाहता हूँ । आप हंस के समान निर्मल हैं । मेरा हृदय मलिनताओं से भरा हुआ है । ऐसा समझकर मैं बड़े असमंजस में हूँ । क्योंकि जिस सरोवर में कौवा, गीध, बगुला, सुअर आदि भरे हों वहाँ हंस कैसे आ सकता है ? भाव यह कि दुर्गुणों से भरे हुए हृदय में भगवान का निवास नहीं हो सकता ।

लाज न लागत दास कहावत ।
हरि निर्मल मल ग्रसित हृदय असमंजस मोहि जनावत ।
जेहि सर काक कंक बक सूकर क्यों मराल तहँ आवत ॥

माया जाल से बंधन मुक्ति

माया का अर्थ है-अज्ञान, उलझन जहाँ यह संसार सत् से ओत-प्रोत है वहाँ उसमें असत् का भी अस्तित्व है । काया की तरह छाया की भी एक भ्रांति यहाँ मौजूद है । बालबुद्धि के लोग जल में चंद्रमा की परछाई देखकर उस खिलौने को लेने के लिए ही मचलते हैं और मृगतृष्णा में भटकने वाले हिरन की तरह थकान भरी निराशा लेकर खाली हाथ वापस लौटते हैं । यही है माया का जादूगरी भरा इन्द्रजाल ।

इंद्रिय लिप्सा की, वासना और मानसिक अदूरदर्शिता की तृष्णा में जो दाद खुजाने जैसा आकर्षण है, उस पर मुग्ध होकर लोग उसी को लक्ष्य मान लेते हैं और निरंतर उसी की प्राप्ति के कठिन प्रयत्नों में निरत रहते हैं । आटे की गोली के लोभ में मछली, दाने के लोभ में पक्षी, वीणा के नाद में मृग, गंध में भँवरा जिस प्रकार अपने प्राण गँवाते हैं, उसी प्रकार मायाजन्य वासना, तृष्णा में फँसकर मनुष्य अपनी जीवन सम्पदा को नष्ट करता है । पेट और प्रजनन के तुच्छ प्रयोजन में जिस प्रकार कीट-पतंग उलझे रहते हैं उसी प्रकार बुद्धिमान मनुष्य भी उसी ताने-बाने में उलझा रहता है । पशु-पक्षी शारीरिक आवश्यकता पूरी करने भर के लिए उपार्जन करते हैं और क्षुधा मिटने पर दौड़-धूप बंद कर देते हैं, पर मनुष्य शरीर पोषण की आवश्यकता पूरी हो जाने पर भी संग्रह के लोभ, प्रदर्शन के अहंकार और संबंधियों के मोह में फँसकर बिना उचित-अनुचित का, आवश्यक-अनावश्यक का विचार किये निरंतर लालच में फँसा रहता है और बहुमूल्य मनुष्य जीवन जिस प्रयोजन के लिए मिला था उसे भुलाकर कुमार्ग अपनाता है, कुकर्म करता है और विपत्ति में फँसता है । इसी भूल का नाम माया है ।

मनुष्य की वास्तविक आवश्यकताएँ स्वल्प हैं, शरीर निर्वाह स्वल्प साधनों से, स्वल्प श्रम से हो सकता है । इंद्रियों की स्वाभाविक भूख नगण्य सी है और वह समयानुसार सहज ही पूरी होती रहती है । संग्रह करके भी मनुष्य उपभोग तो तनिक सा ही कर सकता है । जमा संपदा को दूसरे हड़पते हैं और छीन-झपट में अवांछनीय

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

ईर्ष्या, द्वेष, उत्पीड़न एवं अनाचार उत्पन्न होता है । वासना के असीम उपभोग से शरीर और मन की शक्तियाँ जर्जर होती हैं और मनुष्य खोखला बन कर आधि-व्याधि ग्रसित होता है । इन विकृतियों के अनेकानेक उदाहरण सामने रहते हुए भी मनुष्य अपने जीवन लक्ष्य के महान प्रयोजन को भूलकर अनावश्यक संग्रह और उपभोग की ललक में फँसा हुआ असीम क्षति उठाता है और उस अदूरदर्शितापूर्ण नीति-रीति को बुद्धिमत्ता मानता है, यह माया है । लाभ को हानि और हानि को लाभ समझना बुद्धि विपर्यय है, उसी को माया कहते हैं ।

माया ग्रसित व्यक्ति पग-पग पर ठोकरें खाता है । उपभोग की लिप्सा में कुत्ता सूखी हड्डी चबाकर अपने जबड़े के रक्त को चाटता है और प्रसन्न होता है । इसी प्रकार मूढ़मति व्यक्ति पशु प्रवृतितयों की संलग्नता में ही बुद्धिमत्ता, सफलता और प्रसन्नता अनुभव करते हैं । सुरदुर्लभ जीवन संपदा गँवाकर अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारने जैसी बाल-क्रीड़ा को भी लोग चाव पूर्वक अपनाते हैं, यही माया है ।

मायाग्रस्त स्थिति में मनुष्य को दु:सह दु:ख सहने पड़ते हैं और असीम क्षति उठानी पड़ती है । चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करते हुए बार-बार जन्म-मरण का कष्ट सहना पड़ता है । लोभ-मोह की पूर्ति के लिए किए गए कुकर्मों का दंड तथा निरर्थक कृत्यों में जीवन-संपदा को गँवाने की हानि का परिणाम कष्टकारक ही होता है । ईश्वर अंश जीव को बड़े सौभाग्य से मनुष्य जन्म मिलता है । उसे मायाग्रस्त स्थिति में गँवा दिया जाय तो इसे महान दुर्भाग्य ही कहना चाहिए । इस स्थिति पर प्रकाश डालकर 'रामचरित मानस' में भगवान राम अपने प्रजाजनों को समझाते हुए कहते हैं-

ईश्वर अंश जीव अविनासी । चेतन अमल सहज सुख रासी ।।
सो माया बस भयउ गुसाईं । बँध्यो कीट मर्कट की नाईं ।।

बंदर को मदारी नचाता है, तमाशा बनाये फिरता है । उसी प्रकार माया जीव को नचाती है । उसी प्रसंग में कहा गया है-

फिरत सदा माया का प्रेरा । काल कर्म स्वभाव गुन घेरा ।।
आकर चारि लाख चौरासी । जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी ।।

जीव सहज चैतन्य स्वरूप है, पर वह माया मोह वश उलझन में पड़ जाता है । इस तथ्य को काकभुशुंडि जी स्पष्ट करते हुए कहते हैं-

जड़-चेतनहिं ग्रंथि पड़ गई । जदपि मृषा छूटत कठिनई ।।
तब ते जीव भयउ संसारी । छूटन ग्रंथि न होई सुखारी ।।
जीव हृदय तम मोह विसेषी । ग्रंथि छूटि किमि परइ न देखी ।।

भगवान भाई लक्ष्मण को अरंण्यकांड में समझाते हुए माया का रूप और विस्तार बतलाते हुए कहते हैं-

मैं अरु मोर मोर मैं माया । जेहि बस कीन्हें जीव निकाया ।।
गो गोचर जहँ लग मन जाई । सो सब माया जानेहुँ भाई ।।

माया की प्रबलता के संबंध में काकभुशुंडिजी गरुड़ जी से कहते हैं-

अति प्रचंड रघुपति के माया । जेहि न मोह अस को जग जाया ।।

लेकिन यह भी न मान लें कि माया से बचा नहीं जा सकता । मायाग्रस्त

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

मन:स्थिति तभी तक रहती है जब तक ईश्वर विश्वास और प्रेम मन में नहीं जगता । विभीषण कहता है–

तब लगि बसत जीव मन माहीं । जब लगि प्रभु प्रताप रवि नाहीं ॥

माया जहाँ जाकर लाचार हो जाती है, उस प्रभु के सान्निध्य का प्रभाव काकभुशुंडि जी बताते हैं–

जो माया सब जगहिं नचावा । जासु चरित लखि काहु न पावा ॥
सो प्रभु भ्रूविलास खगराजा । नाच नटी इव सहित समाजा ॥

तुलसीदास जी ने भगवान को सूर्य की और माया को छाया की उपमा दी है । वे कहते हैं कि जब सूर्य प्रात:, सायंकाल दूर रहता है तो छाया बहुत बड़ी, बहुत लंबी हो जाती है । किन्तु जब सूर्य नजदीक सिर पर होता है तो छाया छोटी हो जाती है और पैरों के नीचे आ जाती है । 'दोहावली' में यह मार्मिक उक्ति है–

राम दूरि माया बढ़ति, धरति जानि मन माँह ।
भूरि होत वि दूर लखि, सिर पर पउतर छाँह ॥

भगवान का निवास हृदय में होने पर यह संसार को नचाने वाली माया तिरोहित होती चली जाती है ।

ईश्वर भक्ति जहाँ होगी वहाँ माया के प्रति अनावश्यक आकर्षण न होगा । नर और नारी का आकर्षण प्रसिद्ध है, नारी और नारी के बीच वैसा खिंचाव नहीं होता । भक्ति और माया दोनों स्त्रीलिंग हैं । अस्तु, तुलसीदास जी की उक्ति है कि वे दोनों परस्पर मोहित नहीं होतीं । भक्ति भाव सम्पन्न अंत:करण में माया के प्रति आकर्षण नहीं होता । इस तथ्य को 'मानस' में काकभुशुंडि जी बड़ी कुशलता से व्यक्त करते हैं–

माया भगति सुनहु तुम दोऊ । नारि वर्ग जानै सब कोऊ ॥
मोह न नारि नारि के रूपा । पन्नगारि यह नीति अनूपा ॥

यह माया वस्तुत: अपना भ्रम ही है । अज्ञान के कारण ही मनुष्य अपना यथार्थ नहीं समझता और भ्रम में पड़ जाता है । ऐसे भ्रम को मानसकार ने बच्चों जैसी स्थिति बताया है–

बालक भ्रमहिं न भ्रमहिं गृहादी । कहहि परस्पर मिथ्यावादी ॥

बच्चे गोल गोल घूमते हैं और कहते हैं कि मकान घूम रहे हैं । कोई उनकी बात का खंडन करे तो उसी को झूँठा कहते हैं । मायाग्रस्त प्राणी भी ऐसा ही करते हैं ।

इसी तथ्य को अन्य उदाहरण से मानस के प्रारंभिक प्रसंग में प्रकट करते हुए शिवजी कहते हैं–

निज भ्रम नहिं समझै अज्ञानी । प्रभु पर मोह धरहि जड़ प्रानी ॥
जथा मगन घन पटल निहारी । झाँपेऊ भानु कहहिं कुविचारी ॥

लोग इतने बड़े सूर्य को बादल से ढका हुआ कहते हैं । यह नहीं कहते कि बादल ने हमें ढक लिया है । मायाग्रस्त की ऐसी ही स्थिति होती है ।

शिवजी के शब्दों में ही यह भ्रम स्वप्नवत् है–

मोह निशा सब सोवनिहारा । देखिअ सपन अनेक प्रकारा ॥

यह माया बड़ी दुस्तर लगती है, किन्तु जब मनुष्य उससे बाहर हो जाता है, तो

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

वह महत्वहीन दीखने लगती है ।

सपने होइ भिखारि नृप, रंक नाकपति होइ ।
जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोइ ॥

जागने का अर्थ मोह अज्ञान निवारण से है । इसी तथ्य को 'विनय पत्रिका' के निम्नलिखित पद में दर्शाया गया है–

मैं तोहि अब जान्यों संसार ।
बाँधि न सकहि मोहि हरि के बल प्रकट कपट आगार ॥
देखत ही कमनीय, कछू नाहिन पुनि किए विचार ।
ज्यों कदलीतरु मध्य निहारत कबहुँ न निकसत सार ॥
तेरे लिए जनम अनेक में फिरत न पायो पार ।
महामोह मृगजल सरिता महँ बोर्‌यो हौं बारहिं बार ॥
सुनु खल छलबल मेटि किए बाहिं न भगत उदार ।
सहित सहाय तहाँ बसि अब जेहि ह्रदय न नन्दकुमार ॥
तासो करहु चातुरी जो नहिं जानै मरम तुम्हार ।
सो परि डरे मरे रजु अहि तें बूझे नहिं व्यवहार ॥
निज हित सुनु सठ हठ न करहि जो चाहहि कुसल परिवार ।
तुलसिदास प्रभु के दास न तजि भलहिं जहाँ मद मार ॥

जब प्रभु कृपा से सच्चा बोध हो जाये तभी माया का प्रभाव समाप्त हो जाता है ।

जौ सपने सिर काटै कोई । बिनु जागे दुख दूर न होई ॥
जासु कृपा अस भ्रम मिट जाई । गिरजा सो कृपालु रघुराई ॥

भक्ति की प्रकाश–किरणें जिस अंतःकरण में उदय होगीं उसमें मायारूपी अज्ञानांधकार टिक नहीं सकता । इसी बात को यों भी कह सकते हैं कि जहाँ जीवन के दृष्टिकोण एवं क्रिया संबंधी दूरदर्शिता उदय होगी वहाँ ईश्वर भक्ति का अवतरण हुआ समझा जायगा ।

ज्ञान और भक्ति की अभिन्नता

रामायण की भक्ति अंधी भक्ति या भावोन्माद नहीं है, जैसा कि आमतौर से लोग समझते हैं । उसमें विवेक का पूरा–पूरा समन्वय है । गोस्वामी जी ने ज्ञान को भक्ति से कम महत्व नहीं दिया है । वे विवेक और भक्ति को अभिन्न मानते हैं । हम जो भी करें विवेकपूर्ण करें, यहाँ तक कि ईश्वर विश्वास, ईश्वर–प्रेम और भक्ति आचरण के संबंध में भी यह विचार करते हैं कि वह व्यक्ति और समाज के लिए उपयोगी है या नहीं । निस्संदेह श्रुति सम्मत आस्तिकता इन सभी कसौटियों पर हर दृष्टि से खरी उतरती है ।

ईश्वर सर्वव्यापक, न्यायकारी, कर्मफलदायिनी और उत्कृष्टता से ओत–प्रोत चैतन्य सत्ता है । सांसारिक दंड से बच निकलने के अनेक चतुरतापूर्ण मार्ग हैं, पर दुष्कर्मों का फल ईश्वर द्वारा आज नहीं तो कल दिया ही जाने वाला है, इस मान्यता के कारण व्यक्ति सत्पथ अपनाता है और सद्‌भाव सम्पन्न बनता है इस दृष्टि से आस्तिकता उस नैतिकता का पक्ष पुष्ट करती है जो व्यक्ति एवं समाज की प्रगति एवं समृद्धि में हर दृष्टि से सहायक होती है ।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

ईश्वर-भक्ति अर्थात् ईश्वर प्रेम । ईश्वर प्रेम अर्थात उत्कृष्ट संवेदनाओं से अंतः करण को सुसज्जित बनाना । भावना ही मानवीय चेतना में सर्वोत्कृष्ट तत्व है । इसी से प्रेरित होकर मनोभूमि-बुद्धि, वैभव एवं क्रिया-कलाप को दिशा मिलती है । यदि दुर्भावनाओं से अंतराल भरा होगा तो मस्तिष्क दुष्ट विचारों में निरत रहेगा, असुरता का पक्ष-समर्थन करेगा और शरीर की गतिविधियाँ उसी स्तर के कुकर्मों में जुट पड़ेंगी । इन्द्रियाँ वैसा ही चाहेंगी और मन की लालसा उसी ओर खिंचती रहेगी । महानता का आरंभ आंतरिक सद्भावनाओं की सुदृढ़ स्थापना से होता है । यह भावनाएँ उच्च स्तरीय हों । उनमें करुणा, स्नेह, सद्भावना, कोमलता, आत्मीयता, परदुःखकातरता, उदारता जैसे आध्यात्मिक गुणों का समावेश हो तो चिंतन और कर्तृत्व को निश्चय ही श्रेष्ठ सात्विकता की, देवत्व की, ऋषि कल्प गतिविधियाँ अपनाने की प्रेरणा मिलेगी और क्रमशः वैसा ही व्यक्तित्व बनता-ढलता चला जायगा । ईश्वर-प्रेम, ईश्वर-भक्ति वस्तुतः सुकोमल संवेदनाओं को विकसित एवं परिपुष्ट करने का ही नाम है । भक्ति का समस्त कलेवर इसी प्रयोजन के लिए विनिर्मित हुआ है । उसे अपना कर मनुष्य प्रेमी, उदार, सेवाभावी एवं निर्मल चरित्र बन सकता है । इस मार्ग पर चलते हुए मनुष्य ईश्वर का प्यारा बन सकता है और उसके अनुग्रहजन्य आत्मसाक्षात्कार, जीवन मुक्ति परमपद, ब्रह्मानन्द जैसे उपहारों को पाकर धन्य बन सकता है । यही मान्यता ईश्वर-भक्ति द्वारा पुष्ट होती है । मनुष्य को महामानव बनने की दिशा में अग्रसर करती है, जिससे वह अपना तथा समस्त संसार का भला करता है । ईश्वर भक्ति का दुहरा लाभ है-आत्मोत्कर्षण और उसके साथ जुड़ा हुआ जन कल्याण ।

तर्क, प्रमाण और परख द्वारा ही किसी बात पर स्थिर विश्वास किया जा सकता है । ऐसा विश्वास ही चिरस्थायी और प्रेरणाप्रद होता है । अंध-श्रद्धा और अंध-विश्वास के नाम पर यदि 'बाबा वाक्यं प्रमाणम्' की उक्ति के अनुसार कोई लकीर का फकीर बन भी जाय तो उसमें कोई स्थिरता न रहेगी । उस मान्यता को कोई प्रतिभावान व्यक्ति या विपरीत अवसर सहज ही डगमगा देगा । इसलिए रामायण तर्क प्रमाण और परख को समुचित मान्यता देती है । काकभुशुंडि और गरुड़ संवाद में भक्ति को विश्वास पर आधारित कहा है-

बिनु विश्वास भगति नहिं, तेहि बिनु द्रवहिं न राम ।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ, जीव न लह विश्राम ।।

विश्वास विवेकपूर्ण शोध के बाद ही किया जाता है । उसी प्रकरण में इस तथ्य को और भी स्पष्ट करते हुए कहा गया है-

जाने बिनु न होइ परतीती । बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती ।।
प्रीति बिना नहिं भगति दृढाई । जिमि खगपति जल की चिकनाई ।।

स्पष्ट है कि भक्ति का दिखावा भले ही यों ही कर लिया जाय पर दृढ़ भक्ति तो प्रमाणों पर आधारित विश्वास के द्वारा ही पायी जा सकती है । ज्ञान और भक्ति परस्पर अन्योन्याश्रित हैं । यह भाव 'मानस' में स्पष्ट है जैसे उत्तरकांड के 'मानस-रोग प्रकरण' में कहा गया है कि बुद्धि ज्ञान में स्नान करे तब भक्ति मिलती है-

विमल ज्ञान जल जो सो अन्हाई । तब रह राम भगति उर छाई ।।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

जैसे उक्त प्रसंग में ज्ञानासिक्त होने पर हृदय में भक्ति प्राप्ति दर्शायी गई है, वैसे ही ज्ञान को भी रूखा नहीं भक्ति युक्त होना आवश्यक बतलाया गया है । चित्रकूट के प्रसंग में वशिष्ठ जी राजा जनक से कहते हैं–

सोह न राम प्रेम बिनु ग्यानू । करणधार बिनु जिमि जलयानू ॥

विवेक के आधार पर ही संसार में उचित-अनुचित का भेद किया जा सकता है और गुण ग्रहण करने तथा दोष त्यागने को तत्पर हुआ जा सकता है । यह संसार गुण-दोषमय है इसका निर्माण तम और सत् के, असुरता और देवत्व के सम्मिश्रण से हुआ है । उसमें से हंस की तरह नीर-क्षीर विवेक करते हुए औचित्य को ही ग्रहण करना चाहिए । यह कर्म-ज्ञान भी विवेक द्वारा ही संभव हो सकता है ।

जड़ चेतन गुन दोष मय, बिस्व कीन्ह करतार ।
संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि बिकार ॥

यह हंस-वृत्ति हो तभी तो संसार के विकारों से विरक्त रह कर ईश्वरीय समर्पण संभव होता है । वैराग्य और ज्ञान सहित भक्ति का उपदेश भगवान राम भाई लक्ष्मण को 'लक्ष्मण गीता' के प्रसंग में देते हुए कहते हैं–

धर्म ते बिरति जोग ते ग्याना । ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना ॥
जेहि ते बेग द्रवउँ मैं भाई । सो मम भक्ति भगत सुखदाई ॥

ईश्वर-भक्ति के लिए किए गए पूजा-पाठ, मनन-चिंतन, स्वाध्याय-सत्संग, जप-ध्यान, आचार-कर्मकांड आदि एक प्रकार से मानसिक व्यायाम हैं, जिन्हें अपना कर मनुष्य मनस्वी, आत्मबल सम्पन्न, ब्रह्मवर्चसयुक्त बनता है । अखाड़े में किया गया व्यायाम शरीर को पुष्ट बनाता है और पूजा-कक्ष में किया गया उपासनात्मक साधन सत्प्रवृत्ति के अभिवर्द्धन में असाधारण सहायता करता है । उसका मनोवैज्ञानिक महत्व है । अंतःचेतना के परिष्कार में उससे बहुत बल मिलता है । प्रसुप्त गुप्त शक्तियों को जागृत होने का अवसर मिलता है ।

ईश्वर को सर्वव्यापी समझकर मनुष्य हर किसी के साथ सद्व्यवहार करने के लिए अग्रसर होता है । उसके द्वारा अवांछनीय कार्य नहीं बन सकते हैं । ईश्वर के साथ, उसके सुरम्य परिकर के साथ अनीति बरतने के लिए भला ईश्वरभक्त कैसे तैयार होगा ? अपने इष्टदेव को कष्ट देकर उसे रुष्ट कैसे कर सकेगा ?

ऐसे ही अनेक लाभ आस्तिकता के, ईश्वर विश्वास के, भगवान की भक्ति के हैं । ज्ञान एवं विवेक के आधार पर भक्ति की उपयोगिता असंदिग्ध रूप से सिद्ध होती है । भक्ति यदि अंधविश्वास पर ही हो तो-कल्पनाओं की उड़ान के आधार पर ही यदि यह महल खड़ा किया गया हो तो उस फूँस की झोंपड़ी को ज्ञान, विवेक एवं तर्क से डरने की आवश्यकता हो सकती है । पर जब उसका आधार हर दृष्टि से ठोस है, तो ज्ञान की कसौटी पर भक्ति के परखे जाने में किसी को क्या आपत्ति हो सकती है । इसी से तुलसीदास जी ने ज्ञान-चेतना का, तर्क और विवेक का भरपूर समर्थन किया है । यथा–

भक्तिहि ज्ञानहि नहिं कछु भेदा । उभय हरहिं भव संभव खेदा ॥

भक्ति और विवेक को मानसकार ने अन्योन्याश्रित सिद्ध किया है ।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

काकभुशुंडि-गरुड़ संवाद में भक्ति (रामकृपा) से विवेक जागृत होने की बात कही गयी है-

बिनु सत्संग विवेक न होई । राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ॥

और भगवान राम लक्ष्मण जी को समझाते हुए कहते हैं कि विवेक द्वारा मोह नाश होने पर मेरे प्रति प्रेम पैदा होता है ।

होइ विवेक मोह भ्रम भागा । तब मम चरण उपज अनुरागा ॥

इस प्रकार भक्ति द्वारा विवेक और विवेक द्वारा ईश्वर भक्ति (अनुराग) जागृत होने का स्पष्ट अभिमत प्रकट किया गया है । अयोध्या कांड में श्री वाल्मीकि जी श्रीरामचन्द्र जी से कहते हैं-

जस तुम्हार मानस विमल, हंसन जीहा जासु ।
मुक्ताहल गुनगन चुनइ, राम बसहु हिय तासु ॥

हंस विवेक का ही प्रतीक है । जिसमें हंस वृत्ति अर्थात सत्-असत् का विवेक है उसके हृदय में भगवान का वास होता है । इसी प्रकार 'विनय-पत्रिका' के एक पद में स्पष्ट किया गया है कि इन्द्रियों को वश में किए बिना प्रभु प्राप्ति नहीं हो सकती-

दसईं दसहु कर संजम जो न करिय निज जानि ।
साधन वृथा होइ सब मिलहिं न सारंगपानि ॥

भक्ति के नाम पर प्रचलित अनेकानेक पंथ सम्प्रदायों के मूर्खतापूर्ण भावोन्माद पर करारे व्यंग्य करते हुए गोस्वामी जी ने उन्हें गर्हित बताया है और उनके द्वारा लिखे हुए ऊटपटाँग वचनों को कलि की करतूत कहकर उत्तरकांड में उनको अमान्य ठहराया है ।

श्रुति सम्मत हरि भगति पथ, संयुत विरति विवेक ।
तेहि परिहरहिं मोहबस, कल्पहिं पंथ अनेक ॥

'दोहावली' में भी कहा है-

साखी सबदी दोहरा, कहि कहनी उपखान ।
भगति निरूपहिं भगतकलि, निन्दहि वेद पुरान ॥

इस प्रकार ज्ञान की उपेक्षा करने वाली भक्ति को उन्होंने अनुचित कहा है । भक्ति में कुटिलता की आवश्यकता नहीं, इसको प्रस्तुत करते हुए तुलसीदास जी 'दोहावली' में लिखते हैं-

सूधे मन सूधे बचन, सूधी सब करतूति ।
तुलसी सूधो सकल विधि, रघुवर प्रेम प्रसूति ॥

ईश्वर अन्न-जल की तरह सर्वसुलभ है । यद्यपि अगम निगम है, पर उसे प्राप्त करना सरल हृदय मनुष्य के लिए कुछ भी कठिन नहीं है । 'दोहावली' का ही कथन है-

निगम अगम साहब सुगम, राम साँच लो चाह ।
अम्बु असन अवलोकियत, सुलभ सबै जग माँहि ॥

भक्ति का मार्ग अति सरल है । सादगी, सचाई और सज्जनता अपनाने में कोई कठिनाई नहीं । उस प्रकार का जीवनयापन बिना किसी विशेष कौशल या चातुर्य के

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

किया जा सकता है और सदचारी जीवन जीते हुए ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। उतनी सरलता होते हुए भी वह कठिन भी है क्योंकि जिस प्रकार के निकृष्ट चिंतन और घृणित क्रिया-कलाप का दीर्घकाल से अभ्यास रहा है उसे छोड़ने के लिए अंत: क्षेत्र में कठिन आंतरिक संघर्ष करना पड़ता है। यह मनोनिग्रह ही एकमात्र कारण है जिससे यह सरल मार्ग व्यवहार में कठिन प्रतीत होता है। संचित कुसंस्कार बार-बार पीछे घसीटते हैं, नीचे गिराते हैं, इनसे जूझना ही गीता में वर्णित महाभारत है। इनसे लड़ने के लिए हर भक्त को अर्जुन की भूमिका निबाहनी पड़ती है।

इस आंतरिक समर के लिए भी भक्ति और ज्ञान को परस्पर पूरक बताया है। काकभुशुंडि जी गरुड़ से कहते हैं कि भक्ति यह युद्ध ज्ञान की तलवार से ही लड़ती है-

विरति चर्म असि ज्ञान मद, लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइय सो हरि भगति, देखु खगेस बिचारि॥

भक्ति अनायास ही मिल जाती है यह मान्यता भ्रामक है। काकभुशुंडि जी गरुड़ जी से कहते हैं कि वह अगम है-

सब ते दुर्लभ सो खगराया। राम भगति रत गत मद माया॥

इसी बात को 'गीतावली' के एक पद में अधिक स्पष्ट करते हुए तुलसीदास जी कहते हैं-

"कहत सुगम करत अगम सुनत मीठी लागत।"

ज्ञान और भक्ति को सुगम, सुलभ भी कहा गया है और कठिन भी। इसका स्पष्टीकरण तुलसीदास जी ने 'विनय-पत्रिका' में बड़े विवेक सम्मत ढंग से किया है। वे कहते हैं-

रघुपति भगति करत कठिनाई।
कहत सुगम करनी अपार जानि सोई जेहि बन आई॥
जो जेहि कला कुशल ता कहँ सोइ सुलभ सदा सुखकारी।

अर्थात कहने में सुगम लगने वाली वस्तु के लिए भी क्या करना पड़ता है, यह उसी को पता है जिस पर बीतती है और वस्तुत: जो जिस कला में कुशल हैं, उसके लिए वही सुलभ और सुखकारी है। ज्ञान और भक्ति मार्ग के लिए यह उक्ति बड़ी उचित और विवेकपूर्ण है। इसी पद से आगे चलकर भक्ति के लिए क्या करना पड़ता है, यह स्पष्ट किया गया है। उससे विदित होता है कि ज्ञान, भक्ति और योग आदि परस्पर भिन्न तत्व नहीं हैं। पद का भाव इस प्रकार है-

"जिस प्रकार मछली पानी के प्रवाह को चीरती हुई प्रवाह के विपरीत चलती है उसी प्रकार भक्त को भी संसार प्रवाह की विपरीत दिशा में चलना पड़ता है। जैसे धूल में शक्कर मिला दी जाय उसी तरह संसार में गुण और अवगुण मिले हुए हैं। भक्त चींटी के समान शक्कर (गुण) ग्रहण कर लेता है तथा धूल (अवगुण) छोड़ देता है। जो सारे संसार को अपने में समाया हुआ देखता है तथा अज्ञान रूपी निद्रा को त्याग कर सदा ज्ञान में जाग्रत रहता है जिसे अपना आपा ही सबमें बिखरा हुआ दिखाई देता है, ऐसा योगी ही ईश्वर रूपी परम सुख का अनुभव करता है। न उसे शोक होता है, न

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

मोह, तथा वह हर्ष विषाद से भी मुक्त होता है । तुलसी कहते हैं कि ऐसी दशा में प्राप्त किए बिना संशय का समूल नाश नहीं होता ।" पूरा पद इस प्रकार है–

रघुपति भगति करत कठिनाई ।
कहत सुगम करनी अपार जानै सोई जेहि बनि आई ॥
जो जेहि कला कुशल ता कहँ सोइ सुलभ सदा सुखकारी ।
सफरी सनमुख जल प्रवाह, सुरसरी बहै गज भारी ॥
ज्यों शर्करा मिलै सिकता महँ बलतें, न कोउ बिलगावै ।
अति रसग्य सूच्छ्य पिपीलिका, बिनु प्रयास ही पावै ॥
सकल दृश्य निज उदर मेलि सोवे निद्रा तजि जोगी ।
सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी ॥
सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं ।
तुलसिदास यहि दसाहीन संसय निरमूल न जाहीं ॥

ज्ञान और भक्ति को प्राप्त करने के लिए समान साधनों की आवश्यकता पड़ती है, यह तथ्य भुशुंडि-गरुड़ संवाद में अंत:करण की ग्रंथि छोड़ने के लिए ज्ञान-दीप जलाने की जो विधि बताई है उसमें भक्ति के सारे तत्व सन्निहित हैं । जैसे–

सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई । जौं हरिकृपा हृदय बस जाई ॥
नोइ निवृत्ति पात्र विस्वासा । निर्मल मन अहीर निज दासा ॥

शुद्ध श्रद्धा, हरिकृपा, वैराग्य-भाव, विश्वास तथा निर्मल मन–यह सभी साधन भक्ति के लिए अनेक जगह अनिवार्य बताये गए हैं, जिन्हें यहाँ ज्ञान-दीप के लिए आवश्यक कहा गया है ।

इसी प्रकार वही ग्रंथि छोड़ने के लिए भक्ति रूपी मणि प्राप्त करने के लिए जो साधन बताये हैं उन्हें देखें । वह मणि खोजने के साधन ये हैं–

मर्मी सज्जन सुमति कुदारी । ग्यान बिराग नयन उरगारी ॥
भाव सहित खोजइ जो प्रानी । पाव भगति मनि सब सुख खानी ॥

स्पष्ट है कि ज्ञान और भक्ति दोनों ही शब्द-भेद से भिन्न किन्तु भाव-स्तर पर समान तत्व ही है । तुलसीदास जी ने इन्हें भिन्न नहीं माना है । ज्ञानी भी भक्त होता है और भक्त भी ज्ञानी । उत्तरकांड में कहा गया है कि अनेक प्रकार के भक्तों में प्रभु को ज्ञानी भक्त सर्वाधिक प्रिय हैं–

राम भगति जग चारि प्रकारा । सुकृत चारिउ अगम उदारा ॥
चहू चतुर कहुँ नाम अधारा । ग्यानी प्रभुहि विशेष पिआरा ॥

इस प्रकार गोस्वामी जी ने ज्ञान और भक्ति के समन्वय को अधिक स्पष्ट कर दिया है ।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

आध्यात्मिकता प्रकरण

'राम' आध्यात्मिक प्रेरणा के स्रोत

रामभक्ति को लोग भावोन्माद भर में सीमित कर लेते हैं और सोचते हैं कि कल्पना की उड़ानें और क्रिया-कांडों की छुटपुट कल्पनाएँ करते रहने से भक्ति का उद्देश्य पूरा हो जायगा और उसके वर्णित माहात्म्य का लाभ सहज ही मिल जायगा। बाल-बुद्धि वाले इसके लिए 'राम' शब्द का जप, उच्चारण, कीर्तन आदि पर्याप्त मान लेते हैं और सोचते हैं कि यह सरल बाल-क्रीड़ा, किए हुए पापों का दंड समाप्त करने के लिए बहुत है। जिह्वा द्वारा किया हुआ जप अथवा भगवान की लीला-पुस्तक का पाठ-पारायण ईश्वर को प्रसन्न करने का, उनका अनुग्रह उपलब्ध करा देने का अति सरल उपाय है। पर वस्तुतः ऐसा है नहीं। राम-भक्ति गुण-कर्म प्रधान है। उसमें चिंतन ही नहीं चरित्र भी उच्चकोटि का बनाने की बात अविच्छिन्न रूप से जुड़ी है।

उत्कृष्ट चिंतन द्वारा व्यक्ति को सर्वतोमुखी विकास, परिष्कार की ओर अग्रसर करना और अपनी क्षमता, योग्यता एवं संपदा को स्वार्थ प्रयोजनों में निर्वाह मात्र के लिए न्यूनतम मात्रा में लगाकर शेष को लोक-मंगल के लिए परमार्थ प्रयोजनों में नियोजित करना, यह सच्ची भक्ति के सुनिश्चित लक्षण हैं। जिसने जीभ की नोंक से की गई बक-झक और हाथों के सहारे वस्तुओं की हेरा-फेरी वाले क्रिया-कांड से आगे बढ़कर अंतःकरण में भगवत् भक्ति की स्थापना की होगी उसे अपने गुण-कर्म-स्वभाव की उत्कृष्टता के रूप में उस स्थिति का परिचय देना होगा। अपने दोष-दुर्गुण को ढूँढ़ने और उन्हें चुन-चुन कर बुहार फेंकने का साहस करना पड़ेगा। साथ ही सद्गुणों की दैवी संपदा से अपने मन मंदिर का शृंगार और व्यावहारिक जीवन में होने वाले क्रिया-कलापों का परिष्कार करना पड़ेगा।

ऐसा समर्थ और प्रखर अध्यात्म ही रामायण को अभीष्ट है। राम-कथा के माध्यम से जिस रामभक्ति का प्रतिपादन किया गया है वह वस्तुतः आत्म चिंतन, आत्म सुधार, आत्म निर्माण और आत्म परिष्कार की प्रेरणा से ही ओत-प्रोत है। इसी श्रुति सम्मत और आप्तपुरुषों द्वारा कार्यरूप से लाई गई आध्यात्मिकता को अपनाने की प्रकाश-प्रेरणा रामायण के प्रत्येक अक्षर में भरी पड़ी है। राम का अवतार और उनका तथा उनके अनुयायियों का समस्त चिंतन एवं चरित्र इसी धुरी पर घूमता है। सच्ची आध्यात्मिकता को जन साधारण के गले उतारना और सज्जनोचित मानवतावादी रीति-नीति व्यवहार में समाविष्ट करना-यही रामायण का उद्देश्य है। विडम्बनाओं में उलझनों की अपेक्षा हमें इन्हीं सत्प्रेरणाओं को अपनाकर रामायण के एकमात्र उद्देश्य को पूरा करना उचित है।

तुलसीदास जी ने भगवान राम के गुणों को स्मरण करके उनसे अपने जीवन को सम्पन्न और सार्थक बनाने का आग्रह बार-बार किया है। उनकी महिमा भी कही है।

जग मंगल गुन ग्राम राम के। दानि मुकुत धन धरम धाम के॥

"भगवान के गुण समूह संसार में सब प्रकार मंगल देने वाले हैं। उनसे मुक्ति, धन, धर्म और सद्गति प्राप्त हो सकती है।"

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

स्पष्ट है कि भगवान के जीवन में जिन गुणों का बाहुल्य है, उन्हें उपासक अपने जीवन में भी विकसित करें तो लौकिक और पारलौकिक सभी प्रकार की सफलताएँ पा सकते हैं । इन गुणों के महत्व में आगे कहा है–

सदगुरु ग्यान बिराग जोग के । बिबुध बैद भव भोग रोग के ॥
जननि जनक सिय-राम प्रेम के । बीज सकल ब्रत धरम नेम के ॥
समन पाप संताप सोक के । प्रिय पालक परलोक लोक के ॥
सचिव सुभट भूपति बिचार के । कुंभज लोभ उदधि अपार के ॥

"यह गुन ज्ञान, वैराग्य और योग के लिए गुरु और भवरोग के लिए देवताओं के वैद्य आश्विनी कुमार सिद्ध होते हैं । भगवान के प्रति प्रेम पैदा करने में सद्गुण माता-पिता तथा धर्म-नियमादि बीज रूप हैं । पाप, कष्ट और दुःख का शमन करने वाले तथा परलोक और लोक को नष्ट न होने देने वाले संरक्षक हैं । विचार (ज्ञान) रूपी राजा को मंत्री और योद्धा तथा लोभ आदि को सोखने में कुंभज ऋषि की तरह समर्थ यही गुण है ।"

काम कोह कलिमल करिगन के । केहरि सावक जन मन बन के ॥
अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के । कामद धन दारिद दवारि के ॥

यह सद्गुण मनुष्य के मन रूपी जंगल में फिरने वाले काम-क्रोध और कलियुग के दोषों को मारने के लिए सिंहशावक हैं । भगवान शिव को यह अतिथि की तरह प्रिय हैं और दरिद्रता रूपी अग्नि को बुझाने के लिए इच्छानुसार बरसने वाले मेघ हैं ।

मंत्र महामनि बिषय ब्याल के । मेंटत कठिन कुअंक भाल के ॥
हरन मोह तम दिनकर कर से । सेवक सालि पाल जलधर से ॥

विषय रूपी सर्प के जहर को दूर करने के लिए श्रेष्ठ मार्ग यही सद्गुण है और यही भाग्य के अशुभ लेखों को मिटाने में समर्थ हैं । अर्थात अपने दुर्गुणों के कारण ही अशुभ कर्म होते हैं जिनके प्रभाव से भाग्य बिगड़ता है । सद्गुणों को बढ़ाकर श्रेष्ठ कार्यों में प्रवृत्त होने से दोष स्वतः प्रभावहीन हो जाते हैं । मोहरूपी अंधकार को ये सूर्य किरणों की तरह मिटा देते हैं । सेवा करने वाले को ये उसी तरह पालते हैं जैसे मेघ धान को पालते हैं ।

जगहित निरुपधि साधु लोग से । ....

इसी शृंखला में इन गुणों को भी कहा है–संसार के हित के लिए छल रहित सच्चे संत और पवित्र करने के लिए गंगा की तरंगों के समान हैं । अंत में कहा है–

कुपथ कुतरक कुचालि कलि, कपट दंभ पाखंड ।
दहन राम गुनग्राम जिमि, ईंधन अनल प्रचंड ॥

भगवान राम के गुण कुमार्ग, कुतर्क, गलत गतिविधियों कलियुग में कपट, घमंड तथा पाखंड को जलाने के लिए वैसे ही हैं जैसे ईंधन को जलाने के लिए अग्नि ।

'रामचरितमानस' की उपमा सरोवर से दी है, उसी संदर्भ में श्रीरामचन्द्र जी के यश गुणों को सुंदर जल बताया है । तथा उसी प्रसंग में कहा है–

सो जल सुकृत सालि हित होई । राम भगत जगजीवन सोई ॥
मेधा महि गत सो जल पावन । सकिलि श्रवन मग चलेउ सुहावन ॥
भरेउ सुमानस सुथल थिराना । सुखद सीत रुचि चारु चिराना ॥

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

भगवान के शुभ चरित्र रूपी जल सत्कर्म रूपी धान के लिए हितकारक हैं । रामभक्तों के लिए तो जीवन रूप ही हैं । अर्थात इससे सत्कर्मों की प्रेरणा मिलती है और भक्त उसी के अनुसार अपना जीवन चलाते हैं ।

यह जल मेधा रूपी भूमि ने सोख लिया तथा कानों के मार्ग से एकत्रित होकर अंतःकरण में भर गया । वहाँ स्थिर होकर निर्मल हुआ और सुंदर, शीतल, सुखद हो गया ।

तात्पर्य यह है कि भगवान के गुणों की यशगाथा बुद्धि में धारण की जाय, कानों द्वारा उस केवल एकत्रित किया जाता है, उसका उपयोग तो अंतःकरण में स्थिर होने से होता है । यह ज्ञान-सरोवर विवेक चक्षुओं से देखा जाता है और तभी मन उसे स्वीकार कर लेता है ।

"ग्यान नयन निरखत मनमाना ।"

भगवान की अनेक महानताओं में कुछ विशिष्ट महानताएँ हैं उनकी बलशीलता, बुद्धिमत्ता, तेजस्विता, धर्मपरायणता और सद्‌गुण सम्पन्नता । यह विशेषताएँ राम के अनुयायियों को भी अपने भीतर बढ़ानी चाहिए । जामवंत कहते हैं-

सुनु सर्वग्य सकल उर वासी । बुधिबल तेज धर्म गुन रासी ॥

वाल्मीकि रामायण में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम को सर्वगुण सम्पन्न कहा है-

"सम्पूर्ण गुणों से युक्त वे श्रीराम जी अपनी माता कौशल्या के आनंद को बढ़ाने वाले हैं गंभीरता से समुद्र और धैर्य में हिमालय के समान हैं ।"

स च सर्व गुणो पेतः कौशल्यानन्द वर्धता ।
समुद्र इव गाम्भीर्यं धैर्येण हिमवानिव ॥

वाल्मीकि रामायण में विभिन्न स्थानों पर श्रीराम के लिए जिन गुणवाचक संबोधनों का प्रयोग किया गया है, वे श्रेष्ठ आध्यात्मिक व्यक्तित्व के परिचायक हैं-

(१) नियतात्मा-नियतात्मा माने नियत स्वभाव है । अर्थात श्रीराम निर्विकार हैं उनका मन अपने वश में है, वे मन के वश में नहीं हैं ।

(२) महावीर्य-'वीर्य' शब्द का अर्थ है शक्ति । अतः महावीर्य का अर्थ होगा-'अचिन्त्य-विविध-विचित्र-शक्तिशाली' विविध प्रकार की विचित्र महाशक्तियों से संपन्न है ।

(३) द्युतिमान-'द्युति' शब्द का अर्थ 'प्रकाश' है । अतः 'द्युतिमान' का अर्थ प्रकाशमान होता है । परंतु प्रकाश सब पदार्थों में है, इसलिए श्रीराम स्वाभाविक प्रकाश से युक्त हैं ।

(४) धृतिमान-'धृति' शब्द का अर्थ आनंद है । अतः 'धृतिमान' शब्द का अर्थ निरतिशय आनंदवान होता है । श्रीराम निरतिशय आनंद गुणों से संपन्न हैं ।

(५) वशी-का अर्थ है 'जितेन्द्रिय' है, अर्थात श्रीराम अपनी इन्द्रियों को वश में रखते हैं ।

(६) बुद्धिमान-'बुद्धिमान' का अर्थ है सर्वज्ञ, सब वस्तुओं के ज्ञाता श्रीराम हें । महेश्वरतीर्थ के मत में 'बुद्धिमान' का अर्थ प्रशस्त बुद्धि सम्पन्न है । अर्थात श्रीराम सद्‌बुद्धि संपन्न हैं

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

(७) 'नीति' शब्द का अर्थ है मर्यादा । नीतिवान अर्थात मर्यादावान, मर्यादापालक हैं ।

(८) **वाग्मी**–इसका अर्थ है–'प्रशस्त वाक् अस्य अस्तीति वाग्मी' । प्रशस्त–पवित्र । अर्थात श्रीराम पवित्र वाणी (वेद) के प्रवर्तक हैं और वाणी का श्रेष्ठ प्रयोग करने में कुशल हैं ।

(९) **श्रीमान्**–श्री शब्द का अर्थ विभूतिवान है । अर्थात लौकिक एवं पारलौकिक विभूतियों के वे स्वामी हैं ।

(१०) **शत्रुनिबर्हणः**–मर्यादा के प्रतिकूल चलने वालों को वे नष्ट करने में समर्थ हैं ।

भगवान राम के शील स्वभाव के अवयवों को तुलसीदास जी ने 'विनय पत्रिका' में इस तरह गिनाया है ।

''सुनि सीतापति सील सुभाऊ''

ये अवयव इस प्रकार हैं–

''अक्रोध (कभी किसी ने राम के चन्द्रमुख पर रिस की रेखा नहीं देखी), सौहार्द्र (खेल में जीतकर भी हार मान लेना), कृत को विस्मृत कर तनिक भी अविनय पर पश्चात्ताप करना (चरण के स्पर्श से अहिल्या का उद्धार), क्षमा और सहिष्णुता (परशुराम प्रसंग में) । औदार्य (कैकेयी के विषय में), कृतज्ञता (हनुमान के प्रति), अदोषदर्शन एवं गुण–ग्राहकता (सुग्रीव और विभीषण के प्रसंग में), यशोलिप्सा में अनासक्ति तथा निरहंकारिता (भक्तोद्धार की प्रशंसा से मुँह छिपाना और सकृत प्रणाम की बार–बार चर्चा) ।

मानस–कथा प्रसंग में श्रीराम के गुणों से सभी प्रभावित होते पाये जाते हैं । दशरथ जी गुरु वशिष्ठ जी से कहते हैं कि राम जिस प्रकार मुझकों प्रिय हैं वैसे ही समस्त सेवकों, मंत्रियों, नागरिकों और हमारे मित्र–शत्रु सभी को प्रिय हैं । मानों आपका (वशिष्ठ जी का) आशीर्वाद शरीर धारण करके सुशोभित हो रहा है । महापुरुषों का सच्चा आशीर्वाद जिन्हें मिलता है वे लोकप्रिय एवं यशस्वी बनाने वाले सत्कर्मों में निरत रहते हैं ।

सेवक सचिव सकल पुरवासी । जे हमार अरि मित्र उदासी ॥
सबहिं रामु प्रिय जेहि विधि मोही । प्रभु असीस जनु तनु धरि सोही ॥

भगवान राम स्वयं तो गुणवान हैं ही, अपने स्वजनों को भी उसी मार्ग से परमानंद प्राप्ति का विधान सुझाते हैं । राजतिलक के बाद उन्होंने सभी प्रजाजनों को इसी मार्ग का अवलंबन लेने के लिए कहा ।

परानंद–ब्रह्मानंद और कुछ नहीं आंतरिक परिष्कार की वह स्थिति है जिसमें मनुष्य अपने अंतरंग दोषों और अहिरंग से मुक्ति पाकर उत्कृष्ट आदर्शवादी सत्प्रवृत्तियों से अपने व्यक्तित्व को ओत–प्रोत कर लेता है । इसके लिए उसे किन दोषों का त्याग करना और किन गुणों को अपनाना आवश्यक है इसकी चर्चा रामायण में की गई है और उसी परिष्कृत स्थिति को 'परानंद–संदोह' बताया गया है ।

त्यागने योग्य दुर्गुण इन चौपाइयों में इस प्रकार हैं–(१) बैर, (२) झगड़ना,

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

(३) एषणाएँ, (४) भीरुता-कायरता, (५) लिप्सा, तृष्णा, अभीष्ट उपलब्धि में आतुरता, (६) स्वामित्व एवं प्रभुता का अहंकार, (७) भाव शून्य निष्ठुर मनःस्थिति, (८) पाप-कर्मों में अभिरुचि, (९) आवेशग्रस्त उत्तेजित एवं क्रोधी प्रकृति, (१०) आलस्य, (११) अदूरदर्शिता, (१२) कुसंग, (१३) विषयाशक्ति, (१४) प्रेम भावना का अभाव, (१५) अवांछनीय सम्भाषण, (१६) ईश्वर विमुखता, (१७) मद, (१८) संबंधित व्यक्तियों का अनावश्यक मोह, (१९) उपलब्ध वस्तुओं का कृपणतापूर्ण लोभ, (२०) दुराग्रह, (२१) कुतर्कनाएँ ।

इन दोषों का त्याग और इनके प्रतिपक्षी सद्गुणों का धारण, यही वास्तविक ईश्वर भक्ति और आत्म कल्याण का, परमानंद का राजमार्ग है ।

बैर न बिग्रह आस न त्रासा । सुखमय ताहि सदा सब आसा ॥
अनारम्भ अनिकेत अमानी । अनघ अरोष दक्ष विज्ञानी ॥
प्रीति सदा सज्जन संसर्गा । तृणसम विषय स्वर्ग सपवर्गा ॥
भगत पक्ष दृढ़ नहिं सठताई । दुष्ट तक सब दूरि बहाई ॥
मम गुनग्राम नाम रत, गत ममता मद मोह ।
ताकर सुख सो जानई, परानन्द संदोह ॥

यह सुझाव देते समय उन्होंने अपने प्रिय व्यक्ति की मर्यादा भी बताई है-

सोइ सेवक मम प्रियमत सोई । मम अनुसासन मानै जोई ॥

अस्तु, हमें प्रभुप्रिय बनना चाहिए, उनके गुणों का अनुसरण करके उनके बताये अनुशासन का पालन करना चाहिए । आध्यात्मिक लक्ष्य प्राप्ति के लिए यह श्रेष्ठ मार्ग है ।

गुणों की उपयोगिता और महत्ता

गुण मानव-जीवन की श्रेष्ठतम विभूतियों में गिने जाते हैं । भगवान राम अपनी लीलाओं के द्वारा अनुयार्यी बनाने की प्रेरणा देते हैं । उनके सच्चे भक्त भी अपनी गुणशीलता, कर्म निष्ठा एवं सज्जनोचित विशेषताएँ बढ़ाते हैं । इसी लक्षण से रामायण का पन्ना-पन्ना भरा पड़ा है । 'लंकाकांड' में जब रावण युद्ध के लिए रथ पर चढ़ कर पहुंचा और भगवान राम नंगे पैर खड़े थे, तो विभीषण को चिंता हुई । तब श्रीराम ने उन्हें आध्यात्मिक गुणों का महत्व समझाते हुए कहा कि विजय के मुख्य आधार ये गुण ही हैं-

सुनहु सखा कह कृपा निधाना । जेहि जय होइ सो स्यन्दन आना ॥
सौरज धीरज तेहि रथ चाका । सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका ॥
बल विवेक मम परहित घोरे । छमा कृपा समता रजु जोरे ॥
ईस भजन सारथी सुजाना । बिरति चर्म संतोष कृपाना ॥
दान परसु बुध सक्ति प्रचंडा । बर बिग्यान कठिन कोदंडा ॥
अमल अचल मन त्रोन समाना । सम जम नियम सिलीमुख नाना ॥
कवच अभेद्य बिप्र गुरु पूजा । एहि सम विजय उपाय न दूजा ॥
सखा धर्ममय अस रथ जाके । जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके ॥
महा अजय संसार रिपु, जीति सकइ सो बीर ।
जाके अस रथ होइ दृढ़, सुनहु सखा मतिधीर ॥

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

ऊपर वर्णित गुण भगवान राम के चरित्र में तथा उनके सेवकों सहयोगियों आदि में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं । उन्हीं के कारण वे सब सफल होते चले गए । वनवास होने पर राम को तनिक भी कष्ट नहीं हुआ । कर्तव्य ने उन्हें जहाँ भी धकेला वहाँ वे प्रसन्नतापूर्वक बिना मुख मलिन किए चल दिए । राजकुमार का ऐश्वर्य छोड़कर मुनि वेष बनाने में उन्होंने तनिक भी विलंब नहीं किया । माता-पिता को प्रणाम करके वे उस कर्तव्य पालन के लिए प्रमुदित होते हुए चल दिए ।

रात तुरत मुनि बेष बनाई । चले जनक जननिह सिर नाई ॥

भगवान की इसी निस्पृहता को मंगलदायिन कहते हुए 'अयोध्याकांड' के प्रारंभ में तुलसीदास जी वंदना करते हुए कहते हैं-

प्रसन्नतां या न गतभिषेकस्तथा,
न मम्ले वनवास दुःखतः ।
मुखाम्बुज श्रीरघुनन्दनस्य ।
मे सदास्तु सा मञ्जुल मंगल प्रदा ॥

सज्जन सदुद्देश्य पूरा करने वाले श्रेष्ठ कामों को सहर्ष स्वीकार-शिरोधार्य करते हैं और उस मार्ग में आने वाले कष्टों को ध्यान में न रखकर केवल उससे हित-साधन की बात ही सोचते हैं । राम वनवास के कष्ट और राज्य-सुख छिनने की हानि की बात नहीं सोचते, वरन वन में मुनियों से भेंट-पिता की आज्ञा और माता की सहमति से ऐसा सुअवसर मिलने की बात को अपना सौभाग्य ही समझते हैं ।

मुनिगन मिलनु विशेषि बन, सबहिं भाँति हित मोर ।
तेहि में पितु आयसु, बहुरि सम्मति जननी तोर ॥

भगवान राम अपने दुःख को दुःख नहीं मानते, हर स्थिति में प्रसन्न रह लेते हैं, किन्तु दूसरों के दुःख से दुःखी होते हैं । यह तथ्य हनुमान जी अशोक वाटिका में सीता जी से कहते हैं-

मातु कुसल प्रभु अनुज समेता । तव दुख दुखी सु कृपानिकेता ॥

"हे माता ! प्रभु श्रीराम छोटे भाई सहित सकुशल हैं, पर वे आपके दुःख से दुःखी रहते हैं ।"

अपने को छोटा और दूसरों को बड़ा बताने की सज्जनोचित रीति भगवान राम पालन करते हैं, और परशुराम जी से कहते हैं-"हमारा तो छोटा सा नाम राम है और आपका तो बड़ा नाम है-परशुराम । नाम और काम की दृष्टि से आप हमसे बड़े हैं-

राम मात्र लघु नाम हमारा । परशु सहित बड़ नाम तुम्हारा ॥

लोग नम्रता के नाम पर दीनता के शिकार हो जाते हैं । भगवान राम में दृढ़ता और नम्रता का आदर्श समन्वय था । जनकपुर में परशुराम संवाद के अवसर पर राम ने शीलयुक्त विनम्र बचनों द्वारा ही परशुराम को निरस्त्र कर दिया था ।

सभय विलोके लोक सब, देख जानकी भीरु ।
हृदय न हर्ष विषाद कछु, बोले श्री रघुबीरु ॥
नाथ संभु धनु भंजनिहारा । होइहि कोउ एक दास तुम्हारा ॥

परशुराम जी उत्तेजित होकर गलत शब्द बोलने लगे तो रामानुज लक्ष्मणजी

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

निडर भाव से उन्हें मर्यादा की सलाह देते हैं–

वीर व्रती तुम धीर अछोभा । गारी देत न पावहु सोभा ॥

जब भृगुनाथ लक्ष्मण जी पर अधिक क्रोधित होते हैं तो रामचन्द्र जी शालीनता से स्वयं को अपराधी कहकर उनका ध्यान खींच लेते हैं–

तेहिं नाहीं कछु काज बिगारा । अपराधी मैं नाथ तुम्हारा ॥

शौर्यपूर्ण शालीनता की सीमा प्रकट करते हुए तुलसीदास जी लिखते हैं–

भृगुपति बकहिं कुठार उठाएँ । मन मुसकाहिं राम सिरु नाएँ ॥

उत्तेजना की अधिकता में परशुराम जी लक्ष्मण जी के साथ–साथ श्रीराम जी को भी युद्ध के लिए ललकारने लगते हैं, तब भी वे अपनी बात निर्विकार भाव से कहते रहते हैं–

प्रभु सेवकहिं समरु कस, तजहुँ बिप्रबर रोसु ।
वेषु बिलोकें कहेसि कछु, बालक हूँ नहिं दोसु ॥

ब्राह्मणों, विद्वानों का आदर करने की तथा निर्भय रहने की मर्यादा स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि यदि ब्राह्मण मानकर आपका निरादर हम करें तो फिर सिर झुकाने का कारण ही नहीं रह जाता ।

जौं हम निदरहि बिप्र बदि, सत्य सुनहु भृगुनाथ ।
तो अस को जग सुभट जेहि, भय वश नावहिं माथ ॥

और भरी सभा में शीलयुक्त दृढ़ता के सामने उत्तेजनाग्रस्त अहंकार को झुकना ही पड़ा ।

भगवान राम आगे चलकर अपने प्रेम व्यवहार मधुर वाणी, नम्रता–शिष्टता व्यवाहार आदि गुणों से, असभ्य वनचरों को भी मोहित कर लेते हैं । भगवान राम जब चित्रकूट में वनवासियों से मिलते हैं तो उनके साथ पूरे स्नेह, सौजन्य का व्यवहार करते हैं । फलतः वे नतमस्तक हो जाते हैं और संतुष्ट, प्रसन्न होकर उनके गुणों की चर्चा कहते–सुनते अपने घर जाते हैं । 'अयोध्याकांड' में यह प्रसंग आने पर कहा गया है–

राम सकल बनचर तब तोषे । कहि मृदु बचन प्रेम परिपोषे ॥
बिदा किए सिर नाइ सिधाए । प्रभु गुन कहत सुनत घर आए ॥

अहित करने वाले की ग्लानि को धोने के लिए अपनी ओर से उसके साथ अधिक उदारता का व्यवहार किया जाय, अपनी ओर से उस अप्रिय घटना को भुलाकर सहज और शीलता का परिचय दिया जाय तो पुराने घावों को सहज ही भरा जा सकता है । इस तथ्य के अनुसार भगवान राम चित्रकूट में अन्य माताओं की अपेक्षा कैकेई से सर्वप्रथम मिलते हैं ।

प्रथम राम भेंटो कैकेई । सरल सुभाए भगति मति भेई ॥

समाज में श्रेष्ठ आदर्श उपस्थित करने वालों को वे सर्वाधिक सम्मान देते हैं । कृतज्ञता और प्रत्युपकार उनका सहज स्वभाव है । जटायु की मृतदेह का अन्त्येष्टि–कर्म पिता की तरह वे स्वयं अपने हाथों से करते हैं ।

अविरल भगति माँगि वर, गीध गयउ निज धाम ।
तेहि की क्रिया यथोचित, निज कर कीन्हीं राम ॥

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम हनुमान जैसे निस्पृह एकनिष्ठ सेवक के द्वारा की गयी

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

सेवाओं के प्रति अपने को कृतज्ञ अनुभव करते हैं और कहते हैं कि तेरे उपकार का बदला मैं किस प्रकार दे पाऊँगा ।

सुनु कपि तोहि समान उपकारी । नहिं कोउ सुर नर मुनि तन धारी ॥
प्रति उपकार करौं का तोरा । सनमुख होइ न सकत मन मोरा ॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं । देखेउँ करि बिचारि मन माँहीं ॥

शक्तिबाण लगने से लक्ष्मण मूर्च्छित हैं । इस समय श्रीराम उनकी सेवाओं को याद कर करके रो रहे हैं–"हे भाई ! तुम्हारा स्वभाव कितना मृदुल रहा । तुम मुझे कभी दु:खी देखना नहीं चाहते थे । मेरे लिए तुमने माता-पिता और घर का त्याग कर मेरे साथ वन का दु:ख, वर्षा, गर्मी और ठंड को सहन किया ।"

सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ । बंधु सदा तव मृदुल सुभाऊ ॥
मम हित लागि तजेहु पितु माता । सहेहु बिपिन हिम आतप बाता ॥

शालीनता के साथ उनमें अदम्य आत्मविश्वास भी है । मरते हुए जटायु से कहते हैं कि वे परलोक में जाकर उनके पिता दशरथ से सियाहरण का समाचार न कहें । यह सुनकर वे दु:खी होंगे । यदि मेरा नाम राम है तो यह विश्वासपूर्वक कहता हूँ कि रावण कुल सहित मर कर परलोक जायगा और सियाहरण तथा उसके परिणाम का विवरण अपने मुँह से दशरथजी को सुनायेगा । यह है भगवान का आत्म विश्वास ।

सीताहरन तात जनि, कहहु पिता सन जाइ ।
जो मैं राम तो कुल सहित, कहहि दसानन आइ ॥

खरदूषण की विशाल सेना से लोहा लेने अकेले खड़े हो जाते हैं । सीताजी के साथ लक्ष्मण जी को सुरक्षित स्थान पर भेज देते हैं । राक्षसों के दूत उन्हें भीयभीत करने के लिए संदेश लेकर आते हैं तो उत्तर देते हैं–

हम क्षत्री मृगया बन करहीं । तुम सम खल मृग खोजत फिरहीं ॥
रिपु बलवान देख नहिं डरहीं । एक बार कालहु सन लरहीं ॥

अपने पर ही नहीं अपने भाई के पराक्रम पर भी उन्हें पूरा विश्वास है । 'लंकाकांड' में सुग्रीव द्वारा शंका किए जाने पर वे कहते हैं–

जग महँ सखा निशाचर जेते । लछिमन हनहि निमिष महँ तेते ॥

यही आत्मविश्वास उन्हें निडरता और सफलता प्रदान करता रहता था ।

सिया स्वयंवर के समय उपस्थित कितने ही महाबली इसलिए हार गए कि वे राम की प्रतिभा देखकर सहम गए और हिम्मत छोड़ बैठे । इसके विपरीत राम अपने शौर्य, साहस और तेज को स्थिर रखते हुए पुरुषार्थरत हैं और सहज ही शिवधनुष को तोड़कर रख देते हैं । जबकि सुमेर पर्वत उठाने वाला वाणासुर और कैलाश उठाने वाला रावण पराभव अनुभव करके एक कोने में जा बैठते हैं । श्रीराम का पराक्रम बखानते हुए जनकजी के दूत राजा दशरथ जी से कहते हैं–

सकइ उठाइ सुरासुर मेरू । सोइ हिय हारि गयउ करि फेरू ॥
जेहिं कौतुक सिव सैल उठावा । सोउ तेहि सभा पराभव पावा ॥
तहाँ राम रघुवंश मनि, सुनिय महा महिपाल ।
भंजेउ चाप प्रयास बिनु, जिमि गज पंकज नाल ॥

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

राम की फुर्ती देखते ही बनती है । वे अपने काम को कितने मनोयाग के साथ तत्परतापूर्वक करते हैं कि उनमें तनिक भी अनावश्यक विलंब नहीं होता और देर से हो सकने वाला काम जल्दी ही निपट जाता है । धनुष उठाते, तोड़ते उन्होंने ऐसी ही फुर्ती दिखाई ।

लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े । काहुँ न लखा देख सबु ठाढ़े ॥

बल का प्रदर्शन भी बल-प्रयोग के प्रयोजन को बहुत हद तक हल कर देता है । लोग बलवान पर विश्वास करते हैं और उसी से प्रीति करने को भी तैयार होते हैं । यह तथ्य वहाँ सामने आता है जहाँ सुग्रीव राम के बल की परीक्षा लेकर तब उनका सहयोगी बनना चाहता है । वह दुंदुभि राक्षस की अस्थियों के ढेर एवं ताड़ वृक्षों को दिखाता है और राम से उन्हें वेधन करके अपने बल का प्रमाण देने के लिए कहता है । राम उस परीक्षा में सफल होते हैं और सुग्रीव उनका अनुयायी, सहयोगी बन जाता है ।

दुंदुभि अस्थि ताल देखराए । बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए ॥
देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती । बालि बधव इन्ह भइ परतीती ॥

सौंदर्य की वास्तविकता गहराई छल रहित सरल स्वभाव में है । राम उस सुंदरता की हृदय से सराहना करते हैं, मुग्ध हो जाते हैं और महर्षि विश्वामित्र से अपने मन की बात कहते हैं । आंतरिक द्वंद्व में भी वे वीर सिद्ध होते हैं । छल उन्हें छू नहीं पाता ।

हृदय सराहत सीय लोनाई । गुर समीप गवने दोउ भाई ॥
राम कहा सबु कौसिक पाहीं । सरल सुभाउ छुअत छल नाहीं ॥

जो सद्‌गुणी हैं वे ही सच्चे राम-भक्त हैं । अथवा जो रामभक्त हैं उन्हें सद्‌गुणी होना ही चाहिए । रामायण में वर्णित सभी भगवान के भक्तों का चरित्र ऐसा ही है । उसी से प्रभावित होकर भगवान राम उन्हें प्राणाधिक प्यार करते हैं । किष्किन्धाकांड में वे उनके गुणों को परख लेते हैं तथा उन्हें भाई लक्ष्मण से भी अधिक प्रिय मानते हैं ।

सुनु कपि जिय मानसि जनि ऊना । तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना ॥

विभीषण के सद्‌गुणों से प्रभावित होकर राम उसे हृदय से लगाते हैं कि तुम सद्‌गुणों के कारण मुझे प्राणप्रिय हो ।

सुनु लंकेश सकल गुन तोरे । ताते तुम अतिशय प्रिय मोरे ॥

स्वार्थ और परमार्थ का समन्वय ही हमारी नीति होनी चाहिए । मात्र अपने ही स्वार्थ से इतना लिप्त नहीं होना चाहिए जिससे दूसरे का अहित होने लगे । भगवान राम अंगद को रावण के पास संदेश लेकर जाने को कहते हैं और समझाते हैं कि भले ही रावण शत्रु है पर तुम इस प्रकार की वार्ता करना कि जिसमें उसका भी हित होता है । यहाँ शत्रु का भी अहित न चाहने का प्रसंग है-

काजु हमार तासु हित होई । रिपु सन करेहु बतकही सोई ॥

श्रीराम भरत से कहते हैं-जो दूसरों का आदर करता है, पर दूसरों से मान की इच्छा नहीं रखता वह मुझे प्राणों से भी प्यारा है ।

सबहिं मानप्रद आपु अमानी । भरत प्रान सम मम ते प्रानी ॥

भरत जी भी सम्मान देने और कृतज्ञता व्यक्त करने में श्रीराम से पीछे नहीं हैं ।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

चौदह वर्ष बीतने पर राम अध्योध्या लौटने वाले हैं । इसका संदेश पहुँचाने के लिए हनुमान एक दिन पहले अयोध्या पहुँचते हैं । भरत उनसे मिलते हैं और इतनी लंबी यात्रा करके यह सूचना देने का कष्ट उठाने के लिए वे हनुमान के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहते हैं–

नाहिन तात उरिन मैं तोही । अब प्रभु चरित सुनावहु मोही ॥

भरतलाल जी की निस्पृहता तो लोक विख्यात है । अध्योध्या का राज्य विस्तार बहुत था, इन्द्रलोक जैसा । वहाँ धन सम्पत्ति भी कुबेर जैसी थी । इस सबके बीच रहते हुए भी भरत पूर्णतया राग रहित बने रहे जैसे कि चम्पक-वाटिका में भौंरा निर्लिप्त-स्वामित्व के मद, अहंकार से दूर रहता है, उसी तरह भरत अयोध्या में मात्र एक साधारण नागरिक की तरह रहते थे ।

अवध राज सुर राजु सिहाई । दसरथ धन सुनु धनद लजाई ॥
सोइ पुर बसत भरत बिनु रागा । चंचरीक जिमि चम्पक बागा ॥

राम-लक्ष्मण तो वन में रहते हैं, परंतु भरतजी घर में रह कर शरीर को कष्ट देकर तप करते हैं । भरत के त्याग-तपस्या दोनों सराहना करने के योग्य हैं ।

लखन राम सिय कानन बसहीं । भरत भवन बसि तप तनु कसहीं ॥
दोऊ दिसि समुझि कहत सब लोगू । सब बिधि भरत सराहन जोगू ॥

अपने श्रेष्ठतम कर्तव्य का चुनाव करने की क्षमता के कारण भरत जी को हंस की उपमा दी गई है । हंस के समान उन्होंने अपने कर्तव्याकर्तव्य का विवेचन करके राम-सेवा रूपी क्षीर ग्रहण करके माता कैकेई की कुटिलता रूपी नीर का त्याग कर दिया । गुण और दोष को अलग-अलग करके गुण का ग्रहण और दोष का त्याग करने वाले भरत थे ।

भरत जी के गुणों के कारण तुलसीदास जी ने उन्हें प्रथम वंदनीय माना है । भरत अपने नियमों और व्रतों पर अत्यंत सुदृढ़ हैं । न अनियमित होते हैं, न प्रतिज्ञा तोड़ते हैं, न मर्यादा का उल्लंघन करते हैं । जिसका मन भगवत-परायण है उसको वासना, तृष्णा में भटकने की आवश्यकता उसी प्रकार नहीं होती जैसे कि भौंरा कमल पुष्पों को छोड़कर मलिन पदार्थों की ओर मन नहीं दौड़ाता । वंदना प्रसंग में तुलसीदास जी लिखते हैं–

प्रबनउँ प्रथम भरत के चरना । जासु नेम व्रत जाइ न वरना ॥
राम चरन पंकज मन जासू । लुबुध मधुप इव तजइ न पासू ॥

प्रभु के साथ काम करने वालों के भी यही ढंग हैं । काम को खेल समझकर करने से बड़े-बड़े कठिन प्रयोजन सहज सुलभ हो जाते हैं । जबकि छोटे काम को भी बहुत बड़ा, भयानक और कष्टसाध्य समझकर करने से हिम्मत टूट जाती है और वह बनाये नहीं बनता है । सेनापति जामवंत रीछ-वानरों में उत्साह भरते हैं और भगवान का स्मरण करते हुए खेल-खेल में वृक्ष और पर्वत उखाड़ लाने जैसे कठिन कार्य को सहज बना कर उसमें संलग्न करते हैं ।

रामचरन पंकज उर धरहू । कौतुक एक भालु कपि करहू ॥
धावहु मर्कट विकट बरूथा । आनहु बिटप गिरन्ह के जूथा ॥

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

और बंदरों ने समुद्र बाँधने जैसा कार्य उसी ढंग से कर भी दिखाया। वानर-भालू बड़े-बड़े पर्वत और पेड़ खेल-खेल में फुर्ती के साथ उठा लेते थे और नल-नील उन्हें गेंद के समान ले लेते हैं। इस प्रकार सेतु निर्माण का कार्य तेजी से पूरा हो गया।

अति उतंग गिरि पादप, लीलहिं लेहिं उठाइ।
आनि देहिं नल नीलहिं, रचहिं ते सेतु बनाइ॥

वानरों में तल्लीन होकर कार्य करने का गुण स्पष्ट देखने को मिलता है। सीताजी की खोज में वे अपने शरीर की सुधि भूल गए।

चले सकल बन खोजत, सरिता सर गिरि खोह।
रामकाज लयलीन मन, बिसरा तन कर छोह॥

रावण का दरवार अपने वैभव के लिए सर्वप्रसिद्ध था। इन्द्र, वरुण आदि समस्त देवगण वहाँ हाथ जोड़े मस्तक नीचा किए खड़े रहते थे। लेकिन बंदी वेष में उसी दरवार में पहुँचने पर भी हनुमान निर्भय, निशंक ही रहते हैं।

दसमुख सभा दीखि कपि जाई। कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई॥
देखि प्रताप न कपि मन संका। जिमि अहिगन महुँ गरुड़ असंका॥

अंगद भी रावण की सभा में पहुँचकर अपनी निर्भीकता और अदम्य साहस का परिचय देते हैं और कहते हैं कि मैं तेरे दाँत तोड़ने में सर्वथा समर्थ हूँ पर राम के अनुशासन में बँधा होने के कारण वैसा करता नहीं हूँ।

मैं तब दसन तोरिबे लायक। आयसु मोहि न दीन्ह रघुनायक॥

रावण भगवान राम तथा लक्ष्मण की निंदा करने लगा तो अंगद को सहन न हो सका। उसने अपने पौरुष की एक झलक दिखा ही दी–

जब तेहि कीन्ह राम कै निंदा। क्रोधवंत अति भयउ कपिंदा॥
कटकटान कपि कुंजर भारी। दुहु भुजु दंड तमकि महि मारी॥
डोलत धरनि सभासद खसे। चले भाजि भय मारुत ग्रसे॥

उसी प्रसंग में उन्होंने अपना पैर जमाकर रावण की सभा के योद्धाओं का अभिमान तोड़ डाला।

भूमि न छाँडत कपिचरन, देखत रिपु मद भाग।
कोटि बिघ्न ते संत कर, मन जिमि नीति न त्याग॥

शत्रु दरवार में राम की ओर से पराजित होने पर सीता को हार जाने जैसा संकल्प करके पैर जमा देना उस काल के भारत-संतानों की वीरता का सबसे बड़ा प्रमाण है, जबकि उस दरवार में मेघनाद जैसे सैकड़ों योद्धा उपस्थित थे जिन्होंने देवराज इन्द्र को पराजित करके 'इन्द्रजीत' की पदवी धारण की थी।

हनुमान की रामभक्ति प्रसिद्ध है। यह भी प्रख्यात है कि राम उन्हें प्राणाधिक प्यार करते थे और जब भी अवसर आता उनकी भूरि-भूरि सराहना करते थे। भगवान के हृदय में हनुमान ने जो स्थान प्राप्त किया था, वह भजन-कीर्तन के आधार पर नहीं वरन् उनके सद्गुणों और प्रभु प्रयोजनों के लिए किए त्याग और साहस भरे कार्यों पर

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

ही अवलंबित था । इसी से तुलसीदास जी हनुमान जी की वंदना करते हैं कि भगवान ने स्वयं अपने श्रीमुख से उनके यश का वर्णन किया है–

महावीर बिनवउँ हनुमाना । राम जासु जस आपु बखाना ॥

पवनपुत्र इतने अभिमानहीन हैं कि समुद्र लाँघने के प्रसंग में अपनी क्षमता स्वयं नहीं कहते हैं किन्तु जब जामवंत जी कहते हैं कि राम कार्य के लिए उन्हें आगे आना चाहिए तो क्षण भर भी देर न की । आत्मबोध होते ही उनका व्यक्तित्व सामान्य न रहकर असामान्य पर्वत जैसा ऊँचा और विशाल बन गया–

राम काज लगि तब अवतारा । सुनतहि भयउ पर्वताकारा ॥

मैनाक पर्वत थके हुए हनुमान को कार्यरत देखकर कुछ समय अपने ऊपर विश्राम करने का अनुरोध करता है । पर हनुमानजी को राम काज कीन्हें बिना चैन कहाँ ? वे विश्राम में तनिक भी समय नहीं गँवाना चाहते थे और एक भी क्षण अन्य किसी काम में लगाये बिना भगवान के कार्य में निरत रहना चाहते हैं । मैनाक पर्वत के अनुरोध के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए उसका बार-बार अभिनंदन करके हनुमान अपनी असमर्थता व्यक्त करते हैं–

हनूमान तेहि परसा, कर पुनि कीन्ह प्रनाम ।
रामकाज कीन्हें बिना, मोहि कहाँ विश्राम ॥

हनुमान जी में आत्म विश्वास की कमी नहीं । अपने बल का परिचय देते हुए जामवंत को कहते हैं–

सहित सहाय रावनहिं मारी । आनहुँ इहाँ त्रिकूट उपारी ॥

लंका युद्ध में हनुमान मेघनाद को बार-बार चुनौती देते हैं, पर वह उनकी शक्ति का मर्म जानता है, अतएव उनके पास नहीं आता दूर-दूर ही रहता है ।

बार बार पचार हनुमाना । निकट न आव मरम सो जाना ॥

उच्च उद्देश्यों से प्रेरित व्यक्ति असंभव लगने वाले कामों में भी जुट जाते हैं । ईश्वर पर विश्वास रखकर सदुद्देश्य के लिए पूरी शक्ति के साथ प्रयत्न करते हैं और अंतत: सफल होकर ही रहते हैं । लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर हनुमान को संजीवनी बूटी लाने भेजा गया । वे औषधि को पहचान न सके और पूरा पर्वत ही उखाड़ कर ले आये ।

रामचरन सरसिज उर राखी । चला प्रभंजन सुत बल भाषी ॥
देखा शैल न औषधि चीन्हा । सहसा कपि उपार गिरि लीन्हा ॥

रामायण में उनके बल को अतुलित कहा गया है । भक्त के समान और किसी में बल नहीं होता । लोकोक्ति में भी सत्यनिष्ठ में हजार हाथी के बराबर बल कहा जाता है । हनुमान के बल की तुलना और किसी से नहीं की जा सकती, क्योंकि उनकी ईश्वरनिष्ठा अनन्य थी । तुलसीदास जी ने हनुमान जी की वंदना करते हुए उनमें छः विशेषताओं का अभिनंदन किया है–(१) अतुलित बल, (२) सुदृढ़ देह, (३) असुरता के दाँत तोड़ने में समर्थ, (४) ज्ञानवान-विद्यावान, (५) सद्‌गुणों के भंडार, (६) लोकनायक की विशेषताओं से संपन्न । हनुमान के यह गुण वस्तुत: प्रत्येक सच्चे ईश्वरभक्त को अपनाने पड़ते हैं ।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अतुलित बल धामं, हेम शैलाभ देहं ।
दनुज वन कृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ॥
सकल गुण निधान वानराणामधीशं ।
रघुवर प्रिय भक्तं वातजातं नमामि ॥

भगवत् भक्तों को मात्र सज्जन, सद्‌गुणी होना ही पर्याप्त नहीं उन्हें बल, बुद्धि, कौशल, चातुर्य जैसे लौकिक गुणों से भी संपन्न होना चाहिए । सुदृढ़ और सुविकसित व्यक्तित्व से ही भगवान का अधिक मात्रा में और अधिक अच्छा काम किया जा सकता है, यह मानते हुए ईश्वर परायण लोग क्षमताएँ, योग्यताएँ एवं विशेषताएँ भी बढ़ाते चलते हैं । यह सर्वतोमुखी बलवर्द्धन भी भक्ति का ही एक स्वरूप है । इस शक्ति संपादन की तप साधना से भगवान प्रसन्न होते हैं और उस समर्थ भक्त को अधिक उत्तरदायित्व सौंपते हैं । हनुमान के बल एवं बुद्धि कौशल को देखते हुए राम ने उन्हें अधिक काम सौंपे और अपना प्रियपात्र माना ।

तृष्णा रूपी सुरसा मुँह फाड़ती है । उसकी पूर्ति के लिए हनुमान अपना आकार बढ़ाते हैं । साधन जुटाते हैं । पर इस क्रम से पार नहीं पड़ता । आग में घी डालने की तरह तृष्णा अपना छोटा रूप बनाकर संतोष और अपरिग्रह का आश्रय लेकर उससे अपना पिंड छुड़ाते हैं ।

जस जस सुरसा बदन बढ़ावा । तासु दुगुन कपि रूप दिखावा ॥
सत योजन तेहि आनन कीन्हा । अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा ॥
बदन पैठि पुनि बाहरि आवा । माँगी बिदा ताहि सिरु नावा ॥

इस चतुरता पर प्रसन्न होकर सुरसा अपना प्रयोजन व्यक्त करती है और हनुमान को आशीर्वाद देकर बिदा होती है ।

मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा । बुधि बल मरम तोर मैं पावा ॥
रामकाज सब करिहहुँ, तुम बल बुद्धि निधान ।
आसिष देइ गई सो, हरषि चले हनुमान ॥

सीता जी अशोक वाटिका में हनुमान के बल-कौशल को देखकर प्रसन्न होती हैं ।

देखि बुद्धि बल निपुन कपि, कहेउ जानकी जाहु ।
रघुबर चरन हृदयँ धरि, तात मधुर फल खाहु ॥

सीता जी की कसौटी पर वे खरे उतरते हैं । वे समझ लेती हैं कि अपने गुणों के कारण ही ये भगवान राम के प्रिय बने हैं । अत: स्वयं भी आशीर्वाद देती हैं-

आसिष दीन्ह राम प्रिय जाना । होहु तात बल बुद्धि निधाना ॥

ऐसी ही चतुरता हनुमान ने उस समय भी प्रकट की जब वे लंका में सीता का पता लगाने छिप गए थे । यहाँ सदुद्देश्य के लिए छद्म आचरण का भी समर्थन है ।

अति लघु रूप धरेउ हनुमाना । पैठा नगर सुमिरि भगवाना ॥

लंका में न वे डरे, न उत्तेजित हुए और न विचलित । हर जगह सटीक निर्णय लेते चले गए ।

भगवत परायणता में अंधाधुंध भावुकता और अविवेक पूर्वक भावोन्माद में कुछ

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

भी कर गुजरने और पीछे भगवान को दोष देने वाली मूर्खता के लिए कोई स्थान नहीं है । हर कार्य को तर्क, विवेक के आधार पर देखना, परखना और स्थिति के अनुरूप कदम उठाना हर किसी के लिए, भक्त के लिए भी आवश्यक है । लंका की परिस्थितियों को हनुमान वहाँ जाकर उसी सूक्ष्म सतर्कता के साथ देख-परख रहे हैं ।

मन में तर्क करैं कपि लागा । ताही समय विभीषण जागा ।।

अपनी बुद्धिमानी तथा नीति निपुणता से उन्होंने शत्रु के गढ़ में भी मित्र ढूँढ़ कर प्रभु कार्य सिद्ध किया ।

उनकी ऐसी ही नीति निपुणता का परिचय 'किष्किन्धाकांड' में मिलता है जब वे सुग्रीव को रामकार्य भूलने का स्मरण कराते हैं । कठोर हृदय वालों को सन्मार्ग पर लाने के लिए उन्हें डराना भी एक नीति है । भगवान राम लक्ष्मण की इस बात से सहमत हो जाते हैं कि अपना वचन और कर्तव्य भूल कर प्रमाद में फँसे हुए सुग्रीव को डरा कर सन्मार्ग पर लाया जाय । जहाँ लक्ष्मण धमकी से सुग्रीव को डराते हैं वहाँ हनुमान वार्तालाप में भी उसे विभिन्न पक्षों से समझाकर भयभीत कर देते हैं ।

निकट जाइ चरनन सिरु नावा । चारिहु बिधि कहिं तेहि समुझावा ।।
सुनि सुग्रीव परम भय माना । बिषय मोर हरि लीन्हेउ ग्याना ।।

हनुमान सेवक का आदर्श स्वरूप हैं । स्वामी के कार्य में उन्हें तनिक भी आलस्य नहीं है । वे हमेशा कार्य करने के लिए तत्पर बने रहते हैं । समुद्र को लाँघना, संजीवनी लाना आदि कार्य ऐसे ही हैं । सेवक में मानापमान का भाव भी नहीं होना चाहिए । अपने मान के कारण स्वामी का कार्य बिगड़ जाय, यह उसका कर्तव्य नहीं । लंका में मेघनाद द्वारा बाँधे जाने पर रावण से कहते हैं-

मोहि न कछु बाँधे करि लाजा । कीन्ह चहौं निज प्रभु कर काजा ।।

रावण के दरवार में पहुँच कर वे सबके सामने अपना मत प्रकट कर सके, इसलिए पकड़े जाने की बदनामी से भी उन्हें झिझक नहीं हुई ।

तब वे कूद-फाँद कर नगर में आग लगा रहे हैं । सारा नगर धू-धू जल उठता है और हनुमान उलटते-पलटते समुद्र में कूद पड़ते हैं फिर अपनी चतुराई से लंका जलाकर स्वयं साफ बच कर निकल आते हैं ।

जरइ नगर भा लोग बिहाला । झपट लपट बहु कोटि कराला ।।
जारा नगर निमिष एक माहीं । एक विभीषन कर गृह नाहीं ।।
उलट पलट लंका सब जारी । कूदि पड़ा पुनि सिंधु मँझारी ।।

तुलसीदास जी भगवान के गुणों को जीवन में स्थान देने वालों को विशुद्ध विज्ञान रूप मानते हैं । हनुमान जी ने क्रिया द्वारा और वाल्मीकि जी ने चिंतन, लोकशिक्षण द्वारा भगवान के गुणों का गौरवमय स्वरूप विकसित किया, इसलिए उनकी वंदना में उन्होंने लिखा है-

सीताराम गुणग्राम, पुण्यारण्य विहारिणौ ।
वन्दे विशुद्ध विज्ञानौ, कवीश्वर कपीश्वरौ ।।

भगवान की भक्ति करने वालों को भी इसी प्रकार गुणों में अग्रणी बनना चाहिए ।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

धैर्य-धैर्य एक श्रेष्ठ आध्यात्मिक गुण है । सब साधन होने पर भी धैर्य खो जाने पर लोग भयंकर स्थिति में फँस कर रह जाते हैं, जबकि धैर्य संपन्न व्यक्ति सामान्य साधनों से भी उन परिस्थितियों को पार कर दिखाते हैं । रामचरित मानस में धैर्य के स्वरूप और महत्व को दर्शाने वाले प्रसंग भरे पड़े हैं ।

विवेकियों में अग्रणी श्री भरत जी अयोध्याकांड में श्रीराम वन-गमन एवं दशरथ मरण से उत्पन्न संयुक्त संकट के समय कहते हैं कि धैर्य बनाये रखो तो पार हो जाओगे, अन्यथा सारा परिवार डूब जायगा ।

धीरज धरिअ तो पाइअ पारू । नातरु डूबइ सकल खँभारू ॥

चित्रकूट में राम भरत के अनुग्रह में कुछ निर्णय नहीं हो पा रहा है । जल्दबाजी में तुरंत ही कुछ निर्णय करने की अपेक्षा हर दृष्टि से उस प्रश्न पर गंभीर विचार करना आवश्यक समझा गया और यह सोचा गया कि जहाँ एक बुद्धि काम न करती हो वहाँ कई विज्ञ व्यक्तियों से मिलकर विचार विमर्श करना चाहिए और तब किसी निर्णय पर पहुँचना चाहिए । यह कार्य उतावली में नहीं वरन् धैर्यपूर्ण मन:स्थिति में ही हो सकता है । अस्तु गुरु वशिष्ठ ने यही उचित समझा कि कर्मयोगी जनक के पास चलकर इस समस्या पर विचार करें । राम के चले जाने पर वशिष्ठ जनक के पास जाने के लिए प्रस्थान करते हैं ।

करि प्रनाम तब राम सिधाए । रिषि धरि धीर जनक पहँ आये ॥

जनक भी उतावली में अपना कोई मत व्यक्त नहीं करते वरन् राम, भरत आदि से पूरी बात जान कर गंभीरतापूर्वक वस्तुस्थिति जानने और तथ्यों के अनुरूप किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए भरत के पास अपने अन्य साथी विचारकों के साथ चलते हैं ताकि जहाँ एक की बुद्धि काम न करती हो वहाँ कई मिलकर कोई निर्णय कर सकें । यह विद्वत्-परिषद की आवश्यकता और उपयोगिता का प्रतिपादन है, साथ ही धैर्य के सहारे ही वस्तुस्थिति समझ सकने की यथार्थता का समर्थन भी ।

समय समुझि धरि धीरज राजा । चले भरत पहि सहित समाजा ॥

भरत बड़ी आशा के साथ राम को वापस लाने की योजना बनाकर गए थे । पर जब राम के रुख के कारण उन्हें निराशा हाथ लगी तो भी विचलित नहीं हुए । वरन् स्थिति के अनुरूप अपने को बदलते हुए प्रेमपूर्वक उठे और अपने विशेष धैर्य का परिचय दिया ।

भरत सुजान राम रुख देखी । उठि सप्रेम धरि धीर बिसेषी ॥

सरल स्वभाव वाली राम की माता धीरज धारण करके बोलीं-राज्य देने को कहकर वन दिया इसका मुझे लेशमात्र दु:ख नहीं, लेकिन तुम्हारे बिना भरत को, राजा को, प्रजा को भीषण कष्ट होगा, इस कारण मैं दु:खी हो रही हूँ । यहाँ अपनी विपत्ति का साहस और धैर्यपूर्वक सामना करने एवं दूसरों के दु:खों की चिंता करने की उच्च मन:स्थिति का दिग्दर्शन है ।

सरल सुभाउ राम महतारी । बोली बचन धीर धरि भारी ॥
राजु देन कहि दीन्ह बनु, मोहि न सो दुख लेसु ।
तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि, प्रजहि प्रचंड कलेसु ॥

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

माता कौशल्या का धैर्य लोप नहीं हुआ था, इसलिए उन्होंने मरणासन्न दशरथ को समयोचित सीख दी ।

कौसल्या नृप दीख मलाना । रविकुल रवि अँथयउ जियँ जाना ॥
उर धरि धीर राम महतारी । बोली बचन समय अनुसारी ॥

जो अपने मन को ज्ञान रूपी अग्नि में सोने के समान कसते हैं वही धीर धुरंधर बन पाते हैं । मुनिगण, गुरु वशिष्ठ और विदेहराज जनक इसी कोटि में आते हैं ।

मुनिगन गुर धुर धीर जनक से । ग्यान अनल मन कसे कनक से ॥

सुमंत भी इस कठिन समय में धैर्य धारण करके मधुरवाणी से महाराज को समझाते हैं और उन्हें उनके ज्ञान विवेकपूर्ण पाण्डित्य की याद दिलाते हैं ।

सचिव धीर धरि कह मृदु बानी । महाराज तुम पंडित ग्यानी ॥

सुमंत जी राजा दशरथ को समझाते हैं कि सुख में फूल जाना और दुःख में रोना तो जड़ बुद्धि वाले करते हैं, परंतु विवेकशील पुरुष विवेक द्वारा संकट के समय धैर्य धारण करते हैं ।

सुख हरषहिं जड़ दुख बिलखाहीं । दोउ सम धीर धरहिं मन माहीं ॥
धीरज धरहु बिबेक बिचारी । छाड़िअ सोच सकल हितकारी ॥

माता सुमित्रा लक्ष्मण जी को समझा रही हैं कि हे तात ! कुसमय जानकर धीरज धारण करो–

धीरज धरेउ कुअसवर जानी । सहज सुहृद बोली मृदु बानी ॥

शोकाकुल भरत को गुरु उद्‌बोधन करते हैं कि तात ! धीरज धारण करो और वह करने में लग जाओ जो आज करना है । गुरु के वचन सुनकर भरत उठे और जो करना था उसे करने की साज-सज्जा में लग गए ।

तात हृदयँ धीरजु धरहु, करहु जो अवसर आज ।
उठे भरत गुर बचन सुनि, करन कहेउ सब काज ॥

सत्कार्य के लिए अविचल धैर्य और प्रगाढ़ संकल्प शक्ति का होना आवश्यक है । उतावले और चंचल मति मनुष्य कोई बड़ा लक्ष्य पूरा नहीं कर सकते । पार्वती जी शिवजी के साथ अपने विवाह-प्रण की चर्चा करती हुई कहती हैं कि इसके लिए मैं करोड़ जन्म तक भी कुमारी रह कर प्रयत्न करती रहूँगी ।

कोटि जन्म लगि रगर हमारी । बरउँ संभु नतु रहउँ कुमारी ॥

सेवा–अध्यात्म मार्ग में सेवा परायणता का भी अपना विशेष महत्व है । सच्ची सेवा आत्म-परिष्कार तथा आत्म-विकास के लिए अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होती है । मानसकार ने सेवा और भक्ति को पर्यायवाची माना है तथा उसके संबंध में बड़ी सटीक और प्रखर प्रेरणा स्थान-स्थान पर दी है ।

सुमित्रा लक्ष्मण को राम की सेवा करने और मनोविकारों से दूर रहने की शिक्षा देते हुए आशीर्वाद देकर विदा करती हैं ।

राग रोष इरषा मद मोहू । जनि सपनेहु इन्ह के बस होहू ॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई । मन क्रम बचन करेहु सेवकाई ॥
तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं । दूसर हेतु तात कछु नाहीं ॥

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

भगवान कहते हैं कि हे हनुमान ! यह जड़-चेतन सारा संसार भगवान का विराट रूप है और मेरा कर्तव्य दूसरों की सेवा करना है । जिसकी ऐसी अविचल मति है वही मेरा अनन्य भक्त है ।

सो अनन्य जाके अस मति न टरइ हनुमंत ।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत ॥

'विनय-पत्रिका' में सेवा का महत्व बतलाते हुए लिखा है कि हनुमान जी आपकी सेवा करते-करते आपके समान ही हो गए । उनका नाम लेने से आप प्रसन्न होते हैं ।

सेवक भयो पवनपूत साहिब अनुहरत ।
ताको लिये नाम राम सबको सुढर ढरत ॥

'भक्ति' शब्द व्याकरण के अनुसार 'भज् सेवायां' धातु से बना है । भक्त वह है जिसमें सेवा-भावना भरी पड़ी है । भक्ति का प्रयोग प्रेम के अर्थ में होता है । सच्चा प्रेम जहाँ होगा वहाँ लेने को नहीं, देने को ही मन उँमगेगा । प्रीति की परंपरा यही है ।

भगवान के भक्त को भगवान का काम करना पड़ता है । भगवान का काम अर्थात उनके इस विश्व-उद्यान को अधिक सुंदर, सुरभित, सुविकसित एवं सुसंस्कृत बनाना । लोक मंगल के लिए की गई नि:स्वार्थ सेवा-साधना को निश्चित रूप से ईश्वर पूजा माना जा सकता है । भगवान का भक्त प्रेम करना जानता है । वह आत्मा को, परमात्मा को, जीवन लक्ष्य को, धर्म-कर्तव्य को, समाज-संस्कृति को प्यार करता है । अस्तु, उसका अंत:करण इन सबकी सेवा-साधना के लिए हुलसता है । सेवा की आकांक्षा प्रेम की प्रत्यक्ष परिणति है । ईश्वर-भक्ति विश्व मानव की सेवा-साधना के बिना सार्थक नहीं हो सकती । विश्व-कल्याण के लिए उसे अधिकाधिक सेवा-परक सत्कर्मों में प्रवृत्त रहना पड़ता है । सेवा-धर्म अपना कर लोक सेवक के रूप में अपनी गतिविधियों का जिसने निर्माण, निर्धारण किया वस्तुत: उसी की भक्ति सार्थक एवं सराहनीय है । अध्यात्म मार्ग में आंतरिक परिष्कार के लिए काकभुशुंडिजी ऐसी ही भक्ति का समर्थन करते हुए कहते हैं-

प्रेम भगति जल बिनु खगराई । अभ्यन्तर मल कबहुँ न जाई ॥

भगवान को ऐसे सेवक-भक्त अत्यंत प्रिय हैं । 'अयोध्याकांड' में आता है-

'रामहिं सेवक परम पिआरा ।'

काकभुशुंडिजी से 'उत्तरकांड' में कहते हैं-

पुनि पुनि सत्य कहौं तोहि पाहीं । मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं ॥

स्वयं भगवान राम उत्तरकांड में अपने भाव व्यक्त करते हुए कहते हैं-

सब मम प्रिय सब मम उपजाये । सब तें अधिक मनुज मोहि भाये ॥
तिन्ह महँ द्विज द्विज में श्रुतिधारी । तिन महँ निगम धरम अनुसारी ॥
तिन महँ प्रिय बिरक्त पुनि ग्यानी । ग्यानिहुँ ते प्रिय अति बिग्यानी ॥
तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा । जेहिं गति मोर न दूसर आसा ॥
मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं । ....

भक्त की मर्यादा बताई गई है कि उसे अपने सेवक होने का स्मरण सतत बने रहने चाहिए ।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अस अभिमान जाइ जनि भोरे । मैं सेवक रघुपति पति मोरे ॥

भरत जी उसी भाव का स्मरण करते हुए हनुमान जी से उत्तरकांड में पूछते हैं–

कहु कपि कबहुँ कृपालु गुसाईं । सुमिरिहिं मोहि दास की नाईं ॥

गरुड़ जी को काकभुशुंडि जी यही मर्म समझाते हुए कहते हैं–

सेवक सेव्य भाव बिनु, भवन तरिअ उरगारि ।

स्वयं भगवान राम अपने मुख से कहते हैं–

सबके प्रिय सेवक यह नौती । मोरे अधिक दास पर प्रीती ॥
भगतिवंत अति नीचहुँ प्रानी । मोहि प्रान प्रिय अस मम बानी ॥
सुचि सुसील सेवक सुमति, प्रिय कहु काहिन न लाग ।

हनुमान जी विभीषण को प्रभु के प्रेम की रीति बताते हुए कहते हैं कि वे सदैव अपने सेवकों से प्रेम किया करते हैं–

सुनहु विभीषण प्रभु कै रीती । करहिं सदा सेवक पर प्रीती ॥

भगवान ने स्वयं भी हनुमान जी को यही मर्म समझाया–

समदरसी मोहि कह सब कोऊ । सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ ॥

आध्यात्मिक क्षेत्र में संसार का मुँह ताकना अच्छा नहीं माना जाता । अध्यात्मवादी को, भक्त को अपने अंदर की ईश्वरीय क्षमताएँ जाग्रत करनी चाहिए, पराश्रित की तरह संसार का मुँह नहीं ताकना चाहिए । 'उत्तरकांड' में स्वयं भगवान कहते हैं कि 'मेरा दास कहा कर जो मनुष्यों का आसरा करे उसके विश्वास में दृढ़ता की कमी है ।' पर दुर्भाग्यवश हमें ईश्वर की सत्ता पर विश्वास नहीं होता । ईश्वर परायणता की स्थिति प्राप्त करना बड़ी कठिन साधना का विषय है ।

मोर दास कहाय नर आसा । करइ तो कहहु कहा बिस्वासा ॥

मन और बुद्धि का परिष्कार

रामायण की भगवत् भक्ति का एक पक्ष सद्‌गुणों का संवर्द्धन है । दूसरा दोष–दुर्गुणों का निराकरण है । वस्तुतः ये दोनों अन्योन्याश्रित हैं । कषाय–कल्मष हटेंगे तो उनका स्थान खाली नहीं पड़ा रहेगा वरन् उसकी पूर्ति सद्‌गुण करेंगे । आलस्य छोड़ेंगे तो उसका स्थान श्रमशीलता ही लेगी । अज्ञान हटेगा, अंधकार मिटेगा तो ज्ञान रूपी प्रकाश उस स्थान पर आलोकित होगा । इतने पर भी निषेधात्मक और विधेयात्मक दोनों पक्षों को समझना आवश्यक है । अधर्म का विनाश ही धर्म की स्थापना है । भवगत भक्ति इस दोष–दुर्गुण भरी स्थिति को शुद्ध करने की, निष्पाप बनने की प्रेरणा देती है ।

जीव भव बंधनों में, काल चक्र में बँधा हुआ माया की प्रेरणा से दुःख–सागर में भ्रमण करता है । इसमें उसके गुण–कर्म–स्वभाव ही मूल कारण हैं ।

फिरत सदा माया का प्रेरा । काल कर्म सुभाव गुन घेरा ॥

इसीलिए समझदार व्यक्ति गुण–कर्म–स्वभाव के परिष्कार का सदा ध्यान रखते हैं । माता सुमित्रा अपने पुत्र लक्ष्मण को राम के साथ उनका सहयोगी बनकर वन जाने के लिए कष्ट साध्य जीवन जीने के लिए प्रेरणा देती हैं और कहती हैं कि राम को पिता और सीता जी को माता मानकर उनकी सेवा करना, साथ ही राग, रोष, ईर्ष्या, मद,

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

क्रोध आदि दोषों से दूर रहना । यही माता द्वारा पुत्रों को सत्कार्यों में संलग्न होने के लिए, कष्ट-सहन का शौर्य प्रकट करने के लिए और चरित्र उज्ज्वल रखने के लिए प्रोत्साहन है ।

तात तुम्हारि मात बैदेही । पिता राम सब भाँति सनेही ॥
राग रोष इर्षा मद कोहू । जनि सपनेहु इनके बस होहू ॥

भक्त अपने मन को समझाता है तनिक से क्षणिक सुख के लिए मूर्ख मन तू अनेक कल्पों तक दुष्परिणाम भुगतने से भी नहीं डरता । शांति प्राप्त करने के लिए न सही, कम से कम काल दंड के प्रहार का भय मान कर तो भगवान की शरण में जा । यह प्रभु की कठोर दंड नीति की ओर संकेत है ।

लव निमेष परमाणु जुग, बरस कल्प सर चंड ।
भजसि मन तेहि राम कहु, काल जासु को दंड ॥

मन को भगवान में लगाने का एक ही उपाय है कि वह विषय-विकारों की लिप्सा को छोड़े, विवेक का अनुशासन माने । क्षणिक सुख देकर अनंत काल तक दु:ख देने वाले आंतरिक शत्रुओं से अपना पीछा छुड़ाये । इसी राह पर चलते हुए भगवत अनुग्रह रूपी कल्पवृक्ष पाया जा सकता है ।

जौं मन भज्यौ चहै हरि सुरतरु ।
तौं तज विषय बिकार सार भजु,
अजहूँ मैं जो कहौं सोई करु ॥

विवेक-बुद्धि को कुंठित करने का कारण तीन एषणाएँ हैं । पुत्रेषणा (मोह), वित्तेषणा (लोभ), लोकेषणा (अहंकार)-इन तीन से ग्रसित होने पर मानवीय विवेक मलिन हो जाता है । न सोचने योग्य सोचता है, न चाहने योग्य चाहता है और न करने योग्य करता है ।

सुत वित लोक ऐषणा तीनी । केहि की मति इन कृत न मलीनी ॥

'गीता' में उल्लेख है-

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभः तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥

"नरक में भेजने वाले और आत्मा का नाश करने वाले तीन महादोष काम, क्रोध और लोभ ही हैं । इनको त्याग देना चाहिए ।"

मानसकार का भी मत है कि आंतरिक विक्षोभ उत्पन्न करने वाले तीन खल-काम, क्रोध और लोभ हैं । ये विचारशील मन को भी पल भर में ग्रस्त कर देते हैं ।

तात तीनि अति प्रबल खल, काम क्रोध अरु लोभ ।
मुनि बिग्यान धाम मन, करहि निमिष महँ क्षोभ ॥

विषय विकारों में मन का संलग्न रहना ही अनेक योनियों में जन्मने और तरह-तरह के दु:ख सहने का एक मात्र कारण बताया गया है । 'विनय-पत्रिका' का पद है-

विषय बारि मन मीन भिन्न नहिं, होत कबहुँ पल एक ।
तेहिते सहउँ विपति करुनानिधि, जन्मत जोनि अनेक ॥

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

एक अन्य पद में साधक दोषों से त्रस्त होकर कहता है–

करम सुभाव काल काम कोह लोभ मोह ।
ग्राह अति गहनि गरीबी गढ़ि गह्यो हौं ॥

तुलसीदास जी की यह शंका निर्मूल नहीं । बड़े-बड़े प्राणी थोड़ा चूकते ही इस चक्की में पिसने लगते हैं । अपना विवाह कराने के फेर में पड़े हुए, चिंताग्रस्त नारद षड्रिपुओं के शिकार हो जाते हैं । विश्व मोहिनी के स्वयंवर में उनकी स्थिति क्या हो जाती है यह नीचे की चौपाइयों से स्पष्ट है । वे उस समय कामवश हो चुके थे ।

जप तप कछु न होहि तेहि काला । हे बिधि मिलइ कवन बिधि बाला ॥

उन्हें कामना पूर्ति न होने पर क्रोध आया–

फरकत अधर कोप मन माहीं । सदपि चले कमलापति पाहीं ॥

वे लोभ के कारण तरह-तरह के बहाने करने लगे–

लच्छन सब बिचारि उर राखे । कछुक बनाइ भूप सन भाखे ॥

अपने बनावटी रूप का उन्हें अहंकार भी आ गया–

मुनि मन हरष रूप अति मोरें ।

वे मोहवश विकल हो उठे–

मुनि अति विकल मोह मति नाठी । मनि गिर गई छूटि जनु गाँठी ॥

वे ईर्ष्या से केवल स्वार्थ चिंतन में फँस गए–

मोहि तजि आनहि बरिहि कि भोरें ।

इस स्थिति को समझकर भगवान ने उन्हें विवाह करने से रोक दिया ।

इसी प्रकार परशुराम जी को क्रोध के कारण जनक की सभा में नीचा देखना पड़ा । क्रोध के कारण ही श्रीराम एवं लक्ष्मण जी के बार-बार समझाने, संकेत करने पर भी वे उन्हें पहचान न सके और स्वयं तमाशा बन गए । श्रीराम और लक्ष्मण इसीलिए बार-बार उनको क्रोध छोड़ने की सलाह देते रहे–

लखन कहेउ हँसि सुनहु मुनि, क्रोध पाप करि मूल ।
जेहि बस जन अनुचित करहिं, चरहिं विस्व प्रतिकूल ॥
मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया । परिहरि कोप करिअ अब दाया ॥
टूट चाप नहिं जुरहि रिसाने । बैठिअ होइहिं पायँ पिराने ॥

क्रोधी व्यक्ति विचित्र बातें करता है । परशुराम जी क्रोध से दु:ख पा रहे थे, पर दोष दया को देने लगे–

आजु दया दुख दुसह सहाबा ।

तब लक्ष्मण जी ने व्यंग्य करके उन्हें तथ्य समझाने का प्रयास किया–

जो पै कृपा जरहिं मुनि गाता । क्रोध भये तनु राख बिधाता ॥

श्री राम ने भी कहा–

कहिअ बेगि जेहि बिधि रिस जाई । मुनि नायक सोई करौ उपाई ॥
जेहि रिसि जाइ करइ सोई स्वामी । मोहि जानि आपुन अनुगामी ॥

अंत में समझे तो उन्हें कहना पड़ा–

अनुचित बहुत कहेउ अज्ञाता । छमहु छमा मंदिर दोउ भ्राता ॥

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

क्रोध इसी प्रकार विवेक को नष्ट करके मनुष्य का उपहास करा देता है ।

लालच (तृष्णा) में पड़ कर कष्ट पाने का उदाहरण भगवान ने स्वयं स्वर्णमृग के प्रसंग में सबके शिक्षण के लिए रखा है । इसी प्रसंग को संस्कृत सुभाषित में इस प्रकार भी कहा गया है–"पहले किसी ने न सोने का हिरण देखा न सुना, तो भी तृष्णा के वशीभूत होकर 'विनाश काले विपरीत बुद्धि' का उदाहरण बन कर राम मृगतृष्णा में भटके और कुछ पाने के स्थान पर अपनी पत्नी को भी खो बैठे ।"

नीतो केनापि न द्रष्टपूर्वो न श्रूयते हेममयः कुरंगः ।
तथापि तृष्णा रघुनन्दनस्य विनाश काले विपरीत बुद्धिः ॥

राम जिस मारीचि मृग को मारने जाते हैं वह साधारण हिरन नहीं वरन स्वर्ण-मृग मरीचिका है । पैसे के लोभ में आदमी पागल हो जाता है । अधिक संग्रह करके बड़ा आदमी बनने की, अधिक उपभोग करने की ललक उसे जीवनोद्देश्यों की पूर्ति के लिए सत्कर्म करने का अवसर ही नहीं आने देती, जबकि मनुष्य निर्वाह के लिए थोड़ा-सा उपार्जन करके ही अपना काम चला सकता है और शेष समय परमार्थ प्रयोजनों में लगा कर सुरदुर्लभ मानव जीवन को सार्थक बना सकता है ।

श्रीराम वन में लक्ष्मण से अपनी भूल को स्वीकार करते हुए स्वयं पर व्यंग्य करते हैं । वे कहते हैं कि साधारण हिरन जब मुझ से भयभीत होकर भागते हैं तो उनकी हिरनी समझाती हैं कि तुम्हें डरने की आवश्यकता नहीं । राम तो सोने के हिरन को मारने के लिए तलाश करते फिरते हैं ।

हमहि देखि मृग निकर पराहीं । मृगी कहहिं तुम कहँ भय नाहीं ॥
तुम आनंद करहु मृग जाए । कंचन मृग खोजन ए आए ॥

मोह बुद्धि मनुष्य से ऐसे ही मूर्खता पूर्ण कार्य करा डालती है । मोहग्रस्त मनुष्य के हृदय में ज्ञान-वैराग्य की स्थिति रह नहीं पाती । जिसके हृदय में ज्ञान-वैराग्य होता है उसे ऐसा मोह नहीं होता ।

सुनु मुनि मोह होइ मन ताके । ग्यान बिराग हृदय नहिं जाके ॥

अज्ञान, अविवेक एवं दुर्बुद्धि का परिणाम सब प्रकार की विपत्तियाँ ही होता है । उन्हीं के कारण अनेक प्रकार के विग्रह और संकट खड़े होते हैं । दुष्ट मन द्वारा उत्पन्न दुर्बुद्धि व्यक्ति और समाज को कितनी भयंकर क्षति पहुँचाती है यह मंथरा और कैकेई प्रसंग से स्पष्ट होता है । कैकेई और उसकी दासी मंथरा की दुर्बुद्धि सबके लिए विपत्ति बनकर सामने आई ।

बिपति बाजु बरसा रिपु चेरी । भुईं भइ कुमति कैकेई केरी ॥

दुर्बुद्धि की पहचान यह है कि वह किसी न किसी के अहित की ही बात सोचती है । तोड़-फोड़, विनाश, प्रतिशोध, आक्रमण, कलह, दुरभिसंधियाँ रच कर विग्रह उत्पन्न करना ही उसका प्रमुख प्रयोजन होता है ।

करइ बिचारु कुबुद्धि कुजाती । होइ अकाजु कवन बिधि राती ॥

अपने व्यक्तिगत हानि-लाभ को ही सब कुछ मानना, दूसरों के हित-अनहित की उपेक्षा करना, जन कल्याण का, दूसरों के दुःख-सुख का ध्यान न रखना यह संकीर्ण स्वार्थपरता का परिचायक है । ऐसी निकृष्ट भूमि मंथरा जैसी कुटिल आत्माओं

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

की ही हो सकती है । राम के अभिषेक की बात सुनकर मंथरा अपनी अंतरंग उपेक्षा व्यक्त करते हुए कहती है–

कोउ नृप होहि हमहिं का हानी । चेरि छाँड़ि अब होब कि रानी ॥

दुर्बुद्धि सलाहकार कई बार सहज बुद्धि को कुमार्गगामी बना देते हैं जैसे कि राम राजतिलक को मंथरा ने इस प्रकार प्रस्तुत किया कि कैकेई की सहज बुद्धि उससे प्रभावित होकर उलटी दिशा में बह गई ।

रामहिं तिलक कालि जै भयऊ । तुम्ह कहु बिपति बीजु बिधि बयऊ ॥

जिसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है वह किसी की अच्छी बात भी नहीं सुनता । रावण की भी ऐसी ही अवस्था हो गई थी ।

सुनु सुत भयउ काल बस रावन । सो कि मान अब परम सिखावन ॥

इसीलिए मानसकार का मत है कि किसको दारुण दु:ख मिलने वाला है इसकी पहचान यह है कि उसकी विवेक-बुद्धि चली जाती है । दुर्बुद्धि को दु:ख-दैन्य की पूर्व भूमिका बताया गया है ।

जाको हरि दारुन दुख देहीं । ताकी मति पहिले हरि लेहीं ॥

कुछ और भी दोष-दुर्गुण ऐसे हैं जो देखने में तो छोटे लगते हैं पर हानिकारक वे भी कम नहीं होते । जैसे हठवादिता, असंतोष, असहिष्णुता, सामाजिक कर्तव्यों की उपेक्षा आदि । इन दुष्प्रवृत्तियों को हटाने और उनके स्थान पर सत्प्रवृत्तियाँ स्थापित करने की 'रामायण' में चर्चा है ।

हठ या दुराग्रहवश किसी बात पर अड़ जाना और अपनी बात को प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लेना मनुष्य का बड़ा दुर्गुण है । किसी को दुराग्रही नहीं होना चाहिए, वरन् अपनी पिछली बात विवेक की कसौटी पर अनुपयुक्त प्रतीत हो तो उसे तत्काल त्यागने के लिए तैयार रहना चाहिए । हठ को स्वयं भी राम ने अनुचित कहा । सीता जी रामचन्द्र जी के साथ वन में चलने का आग्रह करने लगीं । माता की इच्छा देखकर श्रीराम जी ने उन्हें अयोध्या में रुकने की सलाह दी और कहा–

कहहुँ सुभाय सपथ सत मोही । सुमुखि मातु हित राखउँ तोही ॥
गुरु श्रुति सम्मत धरम फल, पाइअ बिनहिं कलेस ।
हठ बस सब संकट सहे, गालब नहुष नरेस ॥

और उन्हें सावधान करते हुए कहा–

जो हठ करहु प्रेम बस बामा । तो तुम दुख पाउब परिनामा ॥

मन की अमर्यादित कामनाओं के कारण ही सुख संतोष से वंचित रहता है । मानसकार का मत है कि कामनाओं के नष्ट हुए बिना संतोष नहीं होता और जब तक संतोष न हो तब तक अक्षय सुख स्वप्न में भी प्राप्त नहीं हो सकता ।

बिनु संतोष न काम नसाहीं । काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं ॥

यही भाव दूसरे शब्दों में इस प्रकार प्रकट किया गया है–

कोउ बिश्राम कि पाव, तात सहज संतोष बिनु ।
चलै कि जल बिनु नाव, कोटि जतन पचि-पचि मरिअ ॥

अपने दोषों को छिपाने से वे भीतर ही भीतर बढ़ते और पुष्ट होते रहते हैं । इसी

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

प्रकार अपनी विशेषताओं का बखान करते रहने से वे घटती जाती हैं । गरिमा समाप्त होती है, साथ ही शेखीखोर व्यक्ति दूसरों की आँखों में छोटा होता चला जाता है । इन दुर्गुणों से आत्मोत्कर्ष में तो बाधा पड़ती ही है । इसीलिए भक्त दोषों को छिपाता नहीं वरन् भगवान से यह प्रार्थना करता है कि मन से दिखावे की वृत्ति हटा दें । यही भाव 'विनय-पत्रिका' में तुलसीदास जी प्रकट करते हैं ।

"हे प्रभु ! मैं आपसे विनय करने में सकुचा रहा हूँ क्योंकि मैं जानता हूँ कि यह चराचर जगत आपका ही रूप हैं, पर मैं हठ के कारण आपके इस स्वरूप को नहीं देखता । मैंने मन, वाणी एवं कर्म से जो पाप किए हैं उन्हें तो यत्नपूर्वक छिपाता हूँ, किन्तु यदि कभी दूसरों की प्रेरणा से या ईर्ष्या के कारण मुझे से कोई शुभ कर्म बन पड़े तो उनका ढिंढोरा पीटता हूँ ।"

सकुचत हों अति राम कृपानिधि क्यों करि बिनय सुनावों ।

....

जानत हों हरि रूप चराचर, मैं हठि नयन न लावों ।

....

मन-क्रम-बचन लाइ कीन्हे अघ, ते करि जतन दुरावों ।
पर-प्रेरित इरषा बस कबहुँक, किय कछु सुभ सो जनावों ।

मन उन्मादी भ्रमग्रस्त की तरह भाँति-भाँति की विडंबनाएँ रचने और बाल-क्रीड़ाएँ करने में निरत रहता है । भक्त भगवान से प्रार्थना करता है कि इस बावले को जब आप समझदार और सत्पथगामी बना देंगे तभी उसका कल्याण होगा । इस संदर्भ में 'विनय-पत्रिका' में एक पद है-

दीनबंधु सुखसिंधु कृपाकर कारुनीक रघुराई ।
सुनहु नाथ ! मन जरत त्रिबिध जुर करत फिरत बौराई ॥
कबहुँ जोगरत, भोग निरत सठ, हठ बियोग बस होई ।
कबहुँ मोहबस द्रोह करत बहु, कबहुँ दया अति सोई ॥
कबहुँ दीन, मति हीन, रंकतर, कबहुँ भूप अभिमानी ।
कबहुँ मूढ़ पंडित बिडंब रत कबहुँ धर्म रत ग्यानी ॥

बुद्धिमान मन की इस कुमार्गगामिता को समझते हैं और सावधान करते हैं । जब विभीषण ने रावण को इस पथ पर जाते देखा तो उसे सावधान करने की चेष्टा करते हुए उसने कहा-

काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक के पंथ ।
सब परिहरि रघुबीरहिं, भजहु भजहिं जेहि संत ॥

क्योंकि मन भोगों से शांत नहीं होता । जितना अधिक उपभोग करते हैं उतनी ही यह आग शांत होने के स्थान में अधिकाधिक भड़कती ही जाती है ।

बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ विषय भोग बहु घी ते ।

इस पद में गोस्वामी जी काम की तुलना अग्नि से करते हैं और विषय को घी की उपमा देते हैं । एक दूसरे में इसकी कठिनाई को व्यक्त करते हुए वे कहते हैं-

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

बिषय हीन दुख मिले बिपति अति सुख सपनेहु नहिं पायो ।
उभय प्रकार प्रेत पावक ज्यों धन दुखप्रद श्रुति गायो ॥

जब तक तुझे विषय भोग नहीं मिले थे तब तक उनके न मिलने का दुख था । मिलने पर भी तृप्ति नहीं हुई और असंतोष (दु:ख) भड़का तथा विषयों से वियोग में भी दु:ख मिला । इस प्रकार विषय रूपी धन को वेदों ने दोनों प्रकार (मिलने तथा न मिलने पर) से प्रेताग्नि के समान दु:खदायी ही बताया है ।

इसीलिए 'दोहावली' में मन पर अंकुश लगाने पर जोर देते हुए लिखा है कि 'चाहे तपस्या करके शरीर को जर्जर करें, चाहे वन में रहें या सदा हँसते रहें अथवा मौन व्रत धारण करें, परंतु मन को वश में किए बिना जीवन-मरण के चक्र से छुटकारा नहीं मिल सकता ।'

काया कसौ कि बन बसौ, हँसौ कि साधौ मौन ।
तुलसी मन जीते बिना, छुटै न आवा गौन ॥

मन की मलिनता के कारण जो इच्छाएँ, अभिरुचियाँ हानिकारक हैं वे ही प्यारी लगती हैं । सन्निपात के रोगी को जिस प्रकार विवेक नहीं रहता और कुछ सोचता, चाहता और करता है, उसी प्रकार मायाग्रस्त मलिन मन अहित में हित और हित में अहित की मान्यता बना लेता है । इस अज्ञान का निवारण भगवान की कृपा से ही संभव होता है । 'विनय-पत्रिका' में कहा है-

कबहु देव धनमय रिपुमय कबहुँ नारिमय भासै ।
संस्कृति सन्निपात नाना दुख, बिनु हरिकृपा न नासै ॥

मनुष्य जिन नौ विकारों के कारण दु:ख पाता है, गोस्वामी जी ने उनको मानसिक रोगों का मूल कहा है । यह प्रसंग 'उत्तरकांड' में विस्तार से आया है । उसमें कहा गया है कि मोह में अन्य सब रोगों का निवास बीज रूप में रहता है, जो अवसर पाकर अंकुरित और पल्लवित होता है ।

सुनहु तात अब मानस रोगा । जेहि ते दुख पावहि सब लोगा ॥
मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला । तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला ॥

आगे चलकर मानस रोगों की व्याख्या करते हुए बताया गया है-

काम बात कफ लोभ अपारा । क्रोध पित्त नित छाती जारा ॥
प्रीति करहिं जो तीनहु भाई । उपजइ सन्निपात दुखदाई ॥
विषय मनोरथ दुर्गम नाना । ते सब सूल नाम को जाना ॥
ममता दाद कंडु इरषाई । हरष बिषाद गरह बहुताई ॥
पर दुख देखि जरनि सोइ छई । कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई ॥
अहंकार अति दुखद डमरुआ । दंभ कपट मद मान नेहरुआ ॥
तृष्णा उदर बुद्धि अति भारी । त्रिबिध ईषना तरुन तिजारी ॥
जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका । कहँ लग कहहुँ कुरोग अनेका ॥

'विनय-पत्रिका' में भी शारीरिक रोगों की तुलना कुमनोरथों से की है । साथ ही उसके लिए साधनों की आवश्यकता बताई है । साधनों सहित उनके उन्मूलन के लिए संघर्ष करने की सलाह दी गई है अन्यथा त्रिताप मिलते हैं ।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

रोग बस तनु कुमनोरथ मलिन मनु
पर अपवाद मिथ्यावाद बानी हुई।
साधम की ऐसी बिधि साधन बिना न सिधि
....
इनमें न एको भयो बूझि न जूझ्यो न जयो
ताहिते त्रिताप तयो लुनियत बई।

साधनों की व्याख्या मानस-रोगों के बाद ही काकभुशुंडि जी बताते हैं-

सद्गुरु बैद बचन बिस्वासा। संजम यह न विषय की आसा॥
रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी॥

ध्यान देने योग्य बात है संयम तथा अनुपान का महत्व। संयम बिना औषधि नहीं दी जाती। गलत अनुपान होने से विकार हो जाता है। भक्ति के साथ श्रद्धायुक्त सुमति का अनुपान होना चाहिए। इसमें ढील की गुंजायश नहीं।

तात्पर्य यह है कि भक्ति अथवा ज्ञान का एकांकी उपयोग लाभ नहीं पहुँचाता। उसे सही ढंग से प्रयुक्त करना आवश्यक है। यही दोनों मानस-रोगों के लिए अमोघ साधन हैं। जहाँ सद्बुद्धि-सुमति होगी वहाँ विविध सम्पत्तियाँ उपलब्ध होंगी। जहाँ कुमति का साम्राज्य होगा वहाँ अनेक विपत्तियाँ घिरी रहेंगी।

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना॥

चित्त शुद्धि के लिए विवेक के संदर्भ में 'विनय पत्रिका' में लिखा है-"शास्त्रों का मत है कि अनेक जन्मों के पाप कर्मों के कीचड़ में सना हुआ चित्त विवेक जल बिना निर्मल नहीं हो सकता।" अत: ईश्वर से सद्बुद्धि ही माँगनी चाहिए। विवेकयुक्त मन:स्थिति में ही पापों का संशोधन होता है और उसी के फलस्वरूप सुख-शांति का पथ प्रशस्त होता है।

जनम अनेक किए नाना बिधि करम कीच चित सान्यो।
होइ न बिमल बिबेक नीर बिनु बेद पुरान बखान्यो॥

विवेक के बिना समय पर तप आदि का लाभ भी सही ढंग से नहीं मिल पाता। मनु-शतरूपा ने कितनी कठिन तपस्या की थी। परंतु वरदान के वक्त छिपी हुई पुत्रेषणा की वासना जाग्रत हो गई। वासना का नाश ज्ञान के बिना नहीं होता।

तन सुखाय पंजर करै, धरे रैन दिन ध्यान।
तुलसी मिटै न बासना, बिना बिचारे ग्यान॥

सिद्धांत की आड़ में मन के दोष न पनप सकें इसके लिए विवेक चाहिए। यही मर्म 'विनय पत्रिका' में इस प्रकार कहा है-"यदि मणिपात्र में विष रखा हो और मिट्टी के बर्तन में अमृत दिया जा रहा हो तो व्यक्ति किसे स्वीकार करेगा?" उसे मात्र बाह्य रूप देखकर नहीं विवेकपूर्वक गुण-अवगुण का विचार करते हुए यह निर्णय करना पड़ेगा कि दोनों में क्या ग्राह्य है और क्या अग्राह्य।

मणि भाजन बिष पारई, पूरन अमिअ निहारु।
का छाँडिअ का संग्रहिअ, देखु बिबेक बिचारु॥

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

इस प्रसंग में ढील बरतने से क्या होता है यह 'विनय पत्रिका' में तुलसीदास जी स्पष्ट लिखते हैं-

तुलसी कही है साँची रेख बार बार खांची ।
ढील किए नाम महिमा की नाब बोरिहौ ॥

यदि ऊपर लिखी सावधानी बरती जाय तो त्रिविध साधन एवं कर्मकांड में भूल-चूक रहने पर भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता । प्रभु भक्त की भावना को ही परखते हैं । मानस के प्रारंभिक वंदना प्रकरण में कहा गया है-

उलटा नाम जपत जग जाना । बाल्मीकि भये ब्रह्म समाना ॥

ऐसी ही भक्ति के संदर्भ में मानसकार विश्वास के साथ कहते हैं-

जौं परलोक इहाँ सुख चहहू । सुनि मम बचन हृदय दृढ़ गहहू ॥
खल कामादि निकट नहिं जाहीं । बसइ भगति जाके उर माहीं ॥
व्यापहि मानस रोग न भारी । जिन्ह के बस सब जीव दुखारी ॥
राम भगति मनि उर बस जाके । दुख लवलेस न सपनेहुँ ताके ॥

यही मत 'विनय पत्रिका' में भी व्यक्त किया गया है-

जिनके सुथरु राम प्रेम सुरतरु,
लसत सरस सुख फूलत फरत ।
शुक सनकादि प्रह्लाद नारदादि कहैं,
राम की भगति बड़ी विरति निरत ॥

कामना, वासना से मन की मुक्ति के लिए ज्ञान अथवा भक्ति के दोनों ही सफल प्रयोग मानस में किए गए हैं । शिवजी द्वारा काम दहन का प्रसंग है-

तब सिब तीसर नयन उघारा । चितवत काम भयउ जरि छारा ॥

यह भगवान श्री शंकर जी का तीसरा नेत्र ज्ञान था । ज्ञान से ही कामना की निवृत्ति होती है ।

भक्ति द्वारा वासना निवारण का अनुभव बतलाते हुए काकभुशुंडि जी कहते हैं कि भगवान के प्रति प्रेम जग जाने पर मन अनन्य भाव से भगवान के चरणों में लग गया और सारी वासनाएँ तिरोहित हो गईं ।

उर से सकल बासना भागी । केवल राम चरन लय लागी ॥

मन को स्वच्छ निर्विकार, निर्मल बनाना ईश्वर भक्ति का प्रधान प्रतिफल है । मन की मलिनता जिस मात्रा में बढ़ती जाती है, उसी अनुपात में विवेकशीलता, दूरदर्शिता बढ़ती जाती है । इस निर्मल बुद्धि को ऋतंभरा प्रज्ञा, भूमा आदि नामों से प्रशंसित किया गया है और इसी को आत्मिकता का, ब्रह्म विद्या का प्रधान आधार बताया गया है । मन की वासना, तृष्णा से, स्वार्थ-संकीर्णता, लोभ-मोह के भव-बंधनों से छुड़ा कर भगवान के चरणों में समर्पित करने का अभिप्राय सद्भावनाएँ और सत्प्रवृत्तियों को अंत:करण के सिंहासन पर प्रतिष्ठित करना और अपनी आकांक्षाएँ, विचारणाएँ और गतिविधियाँ उसी दिशा में अग्रसर करना है । रामायण यही शिक्षा देती है ।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

संत और असंत—देव और दानव

संत अर्थात देव, असंत अर्थात दानव । यह दोनों वर्ग सत् और तम के प्रतीक हैं । एक को भगवान का अनुयायी और दूसरे को शैतान का पुजारी कहा गया है । देवासुर संग्राम का विविध उपाख्यानों के रूप में वर्णन मिलता है । वह वस्तुतः संत और असंतों की प्रकृति भिन्नता एवं गतिविधियों का चित्रण है । परस्पर विरोधी होने के कारण उनमें असहयोग, टकराव एवं संघर्ष होना भी स्वाभाविक है, यही देव-दानव युद्ध है । राम-रावण युद्ध, महाभारत आदि इसी टकराव के इतिहास हैं । भगवान का अवतरण साधुता के परित्राण एवं दुष्कर्मरत असुरता के निराकरण के लिए ही होता है । हमें संत परंपरा का अनुयायी और असंत दुष्प्रवृत्ति का असहयोगी-विरोधी होना चाहिए ।

मानस में संतों की वंदना करते हुए उन्हें 'चैतन्य-तीर्थ' कहा गया है । तीर्थों की स्थापना की गयी थी वातावरण के प्रभाव से लोगों से सद्वृत्तियाँ तथा सद्प्रेरणाएँ उत्पन्न करने के लिए । उन स्थानों पर ऋषियों ने सत्कार्यों और उपासना आदि द्वारा श्रेष्ठ संस्कारों का वातावरण बनाया था । सच्चे संत भी अपने श्रेष्ठ संस्कारों के प्रभाव से जन-जन में शुभ प्रवृत्तियाँ फैलाते हैं, अतः वे भी तीर्थ कहे जाने योग्य हैं । साथ ही तीर्थ तो अपने स्थान पर रहते हैं पर साधु तो घूम-घूम कर प्रेरणा संचार करते हैं अतः वे चैतन्य-तीर्थ कहे गए-

मुद मंगलमय संत समाजू । जो जग जंगम तीरथराजू ॥

किन्तु यहाँ संत का अर्थ साधु वेषधारी व्यक्ति नहीं वरन् श्रेष्ठ प्रवृत्तियों और श्रेष्ठ आचरणों से युक्त गुणवान, परमार्थ परायण सज्जन है । *'सुजन समाज सकल गुण खानी'* और ***'तीरथराज समाज सुकर्मा'*** आदि पदों से उक्त प्रतिपादन की पुष्टि होती है ।

संत एक वृत्ति है, वेष नहीं, जैसा कि आजकल समझा जाता है । लाल-पीले कपड़े, तिलक-छापा, कंठी-माला, दंड-कमंडलु, दाड़ी-मुंडन, भस्म-भभूत आदि के आवरण जिनने धारण किए हैं, घर-परिवार को छोड़कर भिक्षावृत्ति पर गुजारा करते हैं, सेवा करने से कोसों दूर, सेवा लेने के लिए तत्पर आज के तथाकथित संत ५६ लाख की संख्या में देश भर में फैले पड़े हैं । जप-ध्यान की थोड़ी लकीर पीट लेना ही जिनने 'संत' का एकमात्र कर्तव्य मान लिया है, घर-परिवार, देश-समाज के उत्तरदायित्वों को जिन्होंने तिलांजलि दे दी है, वे ही वैरागी कहे जाते हैं, भले ही उनमें अहंकार, दंभ, अज्ञान, लालसा, प्रमाद आदि भरे पड़े हों । नशेबाजी जैसी आसुरी वृत्ति को भले ही अपना रखा हो ।

रामायण में संत की परिभाषा यह नहीं है । तुलसीदास जी ने सज्जनों को संत कहा है और उनके दो गुण प्रधान बताये हैं । एक गुण-कर्म-स्वभाव की दृष्टि से उत्कृष्ट चरित्र निष्ठा, दूसरा लोकहित के लिए अधिकाधिक उदारता का परिचय देना तथा जन कल्याण को ईश्वर का काम मान कर उसमें कष्ट सहकर भी पूरा-पूरा सहयोग देना ।

वेष के संबंध में रामायण का मत है कि सामान्य नागरिक जैसी वेषभूषा रखते हुए परिष्कृत जीवन जीने वाले भी संत हैं, भले ही उन्होंने चित्र-विचित्र वेष न बनाया हो । साथ ही उन्होंने साधु-सज्जा से बने-ठने किन्तु महान गुणों से रहित व्यक्तियों की भर्त्सना की है । रामायण ने संत-वृत्ति को सराहा है, वेष की उपेक्षा की है । यदि वेष से विपरीत

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

आचरण है तब तो उसकी कटु आलोचना की है । वंदना-प्रसंग में कहा है-

लखि सुबेष जग बंचक जेऊ । बेष प्रताप पूजियत तेऊ ॥
उघरे अंत न होइ निबाहू । कालनेमि जिमि रावन राहू ॥

इसके विपरीत मानसकार मानते हैं कि संत वृत्ति के व्यक्ति किसी भी वेष में पूज्य हैं-

कियेहु कुबेष साधु सनमानू । जिमि जग जामवंत हनुमानू ॥

'बालकांड' में कपटी मुनि के प्रसंग में वे कहते हैं कि वेष देखकर मनुष्य की परख करने वाले मूर्ख हैं, चतुर नहीं ।

तुलसी देख सुवेष, भूलहि मूढ़ न चतुर नर ।
सुंदर केकहि पेखि, बचन सुधा सम असन अहि ॥

साथ ही साधकों को सावधान करते हुए वे स्पष्ट करते हैं-

बचन बेष ते जो बने, सो बिगरै परिनाम ।
तुलसी मन से जो बने, बनी बनाई राम ॥

इसी प्रकार की अन्य उक्ति है-

बेष बिसद बोलति मधुर, मन कहु करम मलीन ।
तुलसी राम न पाइये, भये बिषम जल मीन ॥

मानस में उज्ज्वल चरित्र, उदार व्यवहार, कोमल अंतःकरण, मृदुल स्वभाव, कर्तव्य-निष्ठा, ईश्वर विश्वास जैसे सद्‌गुणों को साधुता का लक्षण बताया गया है । उत्तरकांड में भाई भरत के प्रश्न के उत्तर में भगवान राम साधु के लक्षण बतलाते हुए कहते हैं-

संतन के लच्छन सुनु भ्राता । अगनित श्रुति पुरान बिख्याता ॥
बिषय अलंपट सील गुनाकर । परदुख दुख सुख सुख देखे पर ॥
सम अभूत रिपु बिमद बिरागी । लोभामरष हरष भय त्यागी ॥
कोमल चित दीनन पर दाया । मन क्रम बच मम भगति अमाया ॥
सबहि मानप्रद आपु अमानी । भरत प्रान सम मम ते प्रानी ॥
बिगत काम मम नाम परायन । सांति बिरति बिनती मुदितायन ॥
सीतलता सरलता मयत्री । द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री ॥
ए सब लच्छन बसहिं जासु उर । जानेहु तात संत संतत फुर ॥
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं । परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं ॥
निंदा अस्तुति उभय सम, ममता मम पद कंज ।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय, गुन मंदिर सुख पुंज ॥
सुनि मुनि संतन के गुन कहऊँ । जिन्ह ते मैं उनके बस रहऊँ ॥
षट विचार जित अनघ अकामा । अचल अकिंचन सुचि सुख धामा ॥
अमित बोध अनीह मित भोगी । सत्वसार कबि कोबिद जोगी ॥
सावधान मानद मद हीना । धीर धरम गति परम प्रबीना ॥
गुनागार संसार दुख, रहित बिगत संदेह ।
तजि मम चरन सरोज प्रिय, तिन्ह कहँ देह न गेह ॥

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं । पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं ॥
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती । सरल सुभाउ सबहिं सन प्रीती ॥
जप तप ब्रत दम संजम नेमा । गुरु गोबिंद बिप्र पद प्रेमा ॥
श्रद्धा छमा मयत्री दाया । मुदिता मम पद प्रीति अमाया ॥
बिरति बिबेक बिनय बिग्याना । बोध जथारथ बेद पुराना ॥
दंभ मान मद करहिं न काऊ । भूलि न देहि कुमारग पाऊ ॥
गावहिं सुनहि सदा मम लीला । हेतु रहित परहित रत सीला ॥

संतों का स्वभाव परहित तथा अपने शुभ संस्कारों से दूसरों के जीवन को सुवासित करने का होता है । जन साधारण राग अथवा द्वेष के वशीभूत होकर लोगों का हित अथवा अनहित किया करते हैं । संत राग-द्वेष से परे होते हैं, अतः उन्हें 'समान चित' कहा गया । अर्थात उनके चित्त की सहज स्थिति डांवाडोल नहीं होती । इसीलिए उनके प्रति कोई हित के भाव रखता है अथवा अहित के इससे प्रभावित हुए बिना ही वे सबको अपने शुभ संस्कारों का लाभ दिया करते हैं, जिस प्रकार हाथों की अंजलि में पुष्प रखने से वह दोनों हाथों को समान रूप से सुगंधित कर देते हैं । वंदना-प्रसंग में तुलसीदास जी ने कहा है-

बंदउँ संत समान चित, हित अनहित नहिं कोइ ।
अंजलि गत सुभ सुमन जिमि, सम सुगंध कर दोइ ॥

संतों के स्वभाव में तीन गुन विशेष हैं-(१) सरल चित्त, (२) जगत हित, (३) भगवान के चरणों में अर्थात भगवान द्वारा स्थापित मर्यादाओं के प्रति प्रेम जाग्रत करने की क्षमता ।

पर कोई भी वस्तु मिलती है सुपात्र को ही । संत भी पात्रता देखकर दुर्लभ प्रवृत्तियाँ लोगों को दिया करते हैं । उस पात्रता में वे बाह्य योग्यताओं को कम महत्व देते हैं, आंतरिक भावना, नीयत को अधिक देते हैं । मानसकार इसीलिए अपने पांडित्य अथवा कौशल की दुहाई न देकर स्वभाव और स्नेह का हवाला देते हुए उनकी कृपा की कामना करते हैं । जिसके स्वभाव में सरलता और लोकहित आदि संतोचित भावनाएँ यथार्थतः हों वही संतों से कुछ प्राप्ति का आग्रह करने का अधिकारी है । मानसकार ने वंदना प्रसंग में ही स्पष्ट किया है-

संत सरल चित जगत हित, जानि सुभाउ सनेहु ।
बाल बिनय सुनि करि कृपा, राम चरन रति देहु ॥

संसार में अधिकांश व्यक्ति ऐसे हैं जो नदी और तालाबों की तरह स्वयं को लाभ मिलने पर उल्लसित होते हैं । पर समुद्र की तरह ऐसे संत और सदाचारी कुछ ही होते हैं जो दूसरों की उन्नति (पूर्ण चंद्र को) देखकर उल्लिसित हों । संतों का और श्रेष्ठ पुरुषों का यह लक्षण है कि वे स्वयं तो पूर्ण काम करते हैं, उन्हें अपने लिए कुछ पाने की अभिलाषा नहीं रहती, पर दूसरों की उन्नति को देखकर हर्षित होते हैं । मानस में उसी शृंखला में कहा गया है-

जग बहु नर सरि सर सम भाई । जे निज बाढ़ि बढ़हि जल पाई ॥
सज्जन सुकृत सिंधु सम कोई । देख पूर बिधु बाढइ जोई ॥

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

संतों के इन्हीं गुणों के कारण उनका उत्थान संसार के लिए भी लाभदायक कहा गया है । काकभुशुंडि जी गरुड़ से कहते हैं–

संत उदय संतत सुखकारी । बिश्व सुखद जिमि इंदु तमारी ॥

सज्जनों को मानसकार ने बड़ा उपयोगी माना है । उनका उपयोग करने वालों को सावधान किया है कि वे आकर्षक नहीं होते, पर हितकारी बहुत होते हैं । बाह्य आकर्षण से प्रभावित होने के अभ्यस्त लोग संतों की उपेक्षा न करें इसलिए कहा है–

साधु चरित सुभ सरिस कपासू । निरस बिसद गुनमय फल जासू ॥

कपास के फल में रस नहीं होता, इस कारण उसे निरर्थक न मानें, उसका गुण देखें कि वह मनुष्य का तन ढक कर एक मूल आवश्यकता को पूरी करता है । संत भी चाहे मनुष्यों के मनोरंजन के काम के न हों, पर वे मनुष्यता के संरक्षण का काम अवश्य करते हैं । वे यह सब इसीलिए कर पाते हैं कि गुणमय हैं, गुणों के भंडार हैं । उक्त चौपाई में 'गुणमय' कहा है । इसके पहले 'सुजन समाज सकल गुन खानी' कहकर भी इसी मत की पुष्टि की है । अतः संतों का प्रधान लक्षण उनमें संतोचित गुण होना ही है ।

अनादि काल से अनंत काल तक यह सृष्टि द्वंद्वात्मक रूप में ही रहने वाली है । भले ही सृष्टि गुण और दोषों के मिश्रण से बनी हो, किन्तु संत हंस के रूप में इन दोनों के पार्थक्य की कला से परिचित हैं । संतों की मान्यता यह है कि जब समस्त सृष्टि गुण-दोष के मिश्रण से बनी हुई है, तब किसी व्यक्ति को केवल पापी अथवा दोषी कहना सर्वथा व्यर्थ है । संत प्रत्येक में गुण-दर्शन के द्वारा उसके अंतर्मन की सद्वृत्तियों को प्रोत्साहित करता है । हंस दूध और पानी को अलग करने की कला जानता है । उसमें उसका भी तो लाभ है कि उसे शुद्ध दूध पीने को मिलता है । 'बालकांड' में यह गुण संतों में बतलाते हुए कहा गया है–

कहहिं बेद इतिहास पुराना । बिधि प्रपंच गुन अवगुन खाना ॥
दुख सुख पाप पुण्य दिनराती । साधु असाधु सुजाति कुजाती ॥
दानव देव ऊँच अरु नीचू । अमिय सजीवन माहुर मीचू ॥
माया ब्रह्म जीव जगदीसा । लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा ॥
कासी मग सुरसरि क्रमनासा । मरु मालब महिदेव गवासा ॥
सरग नरक अनुराग बिरागा । निगमागम गुन दोस बिभागा ॥
जड़ चेतन गुन दोष मय, बिस्व कीन्ह करतार ।
संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि बिकार ॥

संतों का अंतःकरण अति कोमल और उदार होता है । वे स्वयं कष्ट सहकर दूसरों को सुखी बनाने का प्रयत्न करते हैं । अपना सुख-वैभव दूसरों को बाँट देने में और दूसरों का दुःख अपने लिए बँटा लेने में उन्हें आनंद आता है । यह परोपकार प्रवृत्ति ही उन्हें महान, अभिनंदनीय और ईश्वर का प्यारा बनाती है । 'उत्तरकांड' में काकभुशुंडि जी अंतरंग चर्चा करते हुए गरुड़ जी को बताते हैं–

संत हृदय नवनीत समाना । कहा कबिन परि कहै न जाना ॥
निज परिताप द्रवहि नवनीता । परदुख द्रवहि संत सुपुनीता ॥

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

पर उपकार बचन मन काया । संत सुभाउ सहज खगराया ॥

पंपा सरोवर के वर्णन के माध्यम से तुलसीदास जी संत के हृदय की निर्मलता तथा मर्यादा का उल्लेख करते हैं–

बाँधे घाट मनोहर चारी । संत हृदय जस निर्मल बारी ॥

चारों घाटों से तात्पर्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से है । हृदय की निर्मलता की तुलना निर्मल जल से की गई है । इसी प्रकार वर्षा–वर्णन में कहा गया है कि संत के पास सब प्रकार के गुण स्वभावतः एकत्रित हो जाते हैं ।

सिमिट सिमिट जल भरइ तलाबा । जिमि सद्गुण सज्जन पहँ आबा ॥

और भगवान को गुणी तथा निर्मल चित्त व्यक्ति ही सर्वाधिक प्रिय हैं । इसीलिए विनय पत्रिका में तुलसीदास जी यही कामना करते हैं कि वे सच्चे संत की तरह रहकर भगवत प्रेम, सच्ची भक्ति के अधिकारी बन सकें । भक्त की उदात्त भावनाएँ अपने अंदर विकसित होने की आकांक्षा करते हुए वे कहते हैं–

कबहुँक हौ यहि रहनि रहौंगो ।
श्रीरघुनाथ कृपालु कृपा तें संत सुभाव लहौंगो ॥
जथा लाभ संतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो ।
परहित निरत निरंतर मन क्रम बचन नेम निबहौंगो ॥
परुष बचन अति दुसह स्त्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो ।
विगत मान, सम शीतल मन, पर गुन नहि दोष कहौंगो ॥
परिहरि देह जनित चिंता दुख सुख सम बुद्धि सहौंगो ।
तुलसीदास प्रभु यह पथ रहि, अविचल हरि भक्ति लहौंगो ॥

जहाँ संतों की महिमा रामायण में गाई गई है वहाँ असंतों की निंदा भी कम नहीं की गई है । ये दोनों वर्ग दो संस्कृतियों के प्रतीक हैं । एक को देव पक्ष और दूसरे को असुर पक्ष कह सकते हैं । एक परंपरा को अपनाने वाले नरदेव–महामानव पुरुषोत्तम और दूसरी को अपनाने वाले नरपशु यानी पिशाच कहे जा सकते हैं । आकृति की दृष्टि से दोनों एक जैसे होते हैं, उनकी शरीर रचना में कोई अंतर नहीं होता । मात्र प्रकृति भिन्न होती है । असुरों का काला मुँह, मुख से बाहर निकले हुए लंबे दांत, पैने नाखून और सिर पर सींग चित्रित किये जाते हैं । इस प्रकार की शक्ल–सूरत के प्राणी कहीं नहीं पाए जाते । इस अलंकारिक चित्रण में यही बताया गया है कि असुर प्रकृति के मनुष्यों का मुख दुष्कर्मों की कलंक कालिमा से काला होता है । वे पेटू, स्वार्थी, लोभी, कृपण और संग्रही होते हैं, उनके बड़े दांत उचित–अनुचित सबको उदरस्थ करने के लिए मुख की मर्यादा से बाहर निकले रहते हैं । हाथों में बड़े नाखून का होना हिंस्र पशुओं की नीति अपनाकर आक्रमणकारी, आततायी कुकृत्यों में संलग्न होने की दुष्प्रवृत्ति को प्रकट करता है । इस दुष्ट परंपरा को, असुर संस्कृति को, पशु प्रवृत्ति को अपनाने वाले लोगों की कमी नहीं । रामायण में इन्हीं को असंत बताया गया है ।

असुरों की इच्छाएँ, कामनाएँ, मान्यताएँ, विचारणाएँ, आदतें ऐसी घृणित और निकृष्ट होती हैं कि उस आग को अंतरंग में जलाकर वे स्वयं दुःखी होते हैं और दूसरों को दुःख देते हैं । स्वयं गिरते हैं और दूसरों को गिराते हैं । जिसकी विचारणाएँ निकृष्ट

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

होंगी उसकी कृतियाँ घृणित होकर रहेंगी । विचार की स्वाभाविक प्रतिक्रिया कर्म रूप में होती है । जो जैसा सोचेगा वह वैसा करेगा भी । अपना पतन और दूसरों का उत्पीड़न, यही है असंत के व्यक्तित्व का विश्लेषण । इस असुर संस्कृति के निंदनीय स्वरूप और दु:खद प्रतिफल से रामायण ने जन साधारण को सचेत किया है और उससे दूर रहने की प्रेरणा दी है । संत-असंत, देव-दानव का अंतर क्षमताओं का नहीं उनके प्रयोग की दिशा और ढंग का है । यह तथ्य स्पष्ट करते हुए मानस के वंदन क्रम में खलों की वंदना करते हुए उनमें अनेक क्षमताओं की चर्चा की गई है, जिन्हें सामान्य रूप में अच्छा माना गया है, लेकिन गलत दिशा में प्रयुक्त होने से वे हानिकारक हो जाती हैं । जैसे-

पर अकाज भट सहसबाहु से ।

योद्धा होना श्रेष्ठ गुण है, पर उसकी वीरता दूसरों के काम बिगाड़ने में लग जाती है ।

'जे पर दोष लखहिं सहसाखी ।'
'सहस नयन पर दोष निहारा ।'

सहसाखी-सहस्र साक्षी का अपभ्रंश है, जिसका अर्थ है हजारों साक्षियों के बराबर सूक्ष्म अवलोकन करने की क्षमता से संपन्न । उसी तरह का भाव 'सहस्रनयन' से संबोधन में है, जो देवराज इंद्र के लिए प्रयुक्त होता है । क्षमताएँ श्रेष्ठ हैं, किन्तु परदोष दर्शन में उनका प्रयोग होने से वे अहितकर हो जाती हैं ।

उसी प्रकार 'आत्म-बलिदान' एक श्रेष्ठ प्रवृत्ति है, किन्तु उसका दुरुपयोग देखिए-

'परहित घृत जिनके मन माखी ।'

जैसे मक्खी घी में कूद कर स्वयं भी मर जाती है और घी को भी खराब कर देती है । ऐसा बलिदान कैसे प्रशंसनीय कहा जा सकता है । ऐसा ही दूसरा उदाहरण है-

पर अकाज लगि तन परिहरहीं । जिमि हिम उपल कृषी दल गरहीं ॥

जिस प्रकार ओले कृषि को नष्ट करते हैं और स्वयं भी गल जाते हैं, वैसे ही दुष्ट व्यक्ति दूसरे के अहित में अपने प्राणों की बाजी लगा देते हैं ।

बहुश्रुत होना श्रेष्ठ गुण है, किन्तु श्रवण-क्षमता का भी दुरुपयोग देखिए-

'पर अघ सुनहिं सहस दस काना ।'

खल दूसरों के पाप दस हजार कानों से सुनते हैं, सुनने में बड़ी रुचि रखते हैं, अघाते ही नहीं ।

इसी प्रकार कोई अपने प्रति शत्रुता का भाव रखता है, कोई मित्रता का रखता है अथवा उपेक्षा रखता है इसका ख्याल किए बिना सबके साथ एक-सा व्यवहार रखना समता का आदर्श है । किन्तु इसी प्रकार की समता का प्रयोग खल अन्य प्रकार से करते हैं-

उदासीन अरि मीत हित, सुनत जरहि खल रीति ।

अत: मानसकार सबको सावधान करते हैं कि केवल सामर्थ्यों, सफलताओं,

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

योग्यताओं और विभूतियों से मनुष्य का मूल्यांकन न करें, उसकी सद्विचारणा तथा आचरण की दिशा देखकर करें। खलों से बचने के लिए भरत जी को संतों के लक्षण बताने के बाद भगवान राम स्वयं ही असंतों के स्वभाव को समझाते हुए कहते हैं-

सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ। भूलेहु संगति करिअ न काऊ॥
तिन्ह कर संग सदा दुखदाई। जिमि कपिलहि घालइ हरहाई॥
खलन्ह हृदय अति ताप बिसेषी। जरहिं सदा पर संपति देखी॥
जहं कहु निंदा सुनहि पराई। हरषहिं मनहु परी निधि पाई॥
काम क्रोध मद लोभ परायन। निर्दय कपटी कुटिल मलायन॥
बयरु अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सों॥
झूठइ लेना झूठइ देना। झूठइ भोजन झूठ चबेना॥
बोलहि मधुर बचन जिमि मोरा। खाइ महा अहि हृदय कठोरा॥
पर द्रोही पर दार रत, पर धन पर अपवाद।
ते नर पाँवर पाप मय, देह धरे मनुजाद॥
लोभइ ओढ़न लोभइ डासन। सिस्रोदर पर जमपुर त्रास न॥
काहू की जो सुनहिं बड़ाई। स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई॥
जब काहू को देखें बिपती। सुखी भए मानहु जग नृपती॥
स्वारथ रत परिवार बिरोधी। लंपट काम लोभ अति क्रोधी॥
नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहिं ते सहहिं महा भव भीरा॥
करहिं मोह बस नर अघ नाना। स्वारथ रत परलोक नसाना॥

काकभुशुंडि जी भी गरुड़ जी को सावधान करते हुए कहते है कि खल लोग स्वयं कष्ट सहकर भी दूसरों को दु:ख पहुँचाते हैं-

सन इव खल पर बंधन करहीं। खाल कढ़ाइ विपति सहिं मरहीं॥

तुलसीदास जी ने ऐसी प्रवृत्तियों की हर जगह निंदा की है। देवगण स्वार्थवश राम के राज्याभिषेक से प्रसन्न नहीं होते तो मानसकार की उक्ति है-

तिनहिं सुहाइ न अवध बधावा। चोरहिं चाँदनि राति न भावा॥
ऊँच निबाह नीच करतूती। देखि न सकहिं पराइ विभूती॥
ऊतरु देह न लेइ उसासू। नारि चरित करि ढारइ आँसू॥
सहज सरल रघुबर बचन, कुमति कुटिल कर जान।
चलें जोंक जल वक्र गति, जद्यपि सलिल समान॥

कुटिल प्रकृति जिनकी होती है, उनकी सदैव विपरीत दृष्टि बनी रहती है। जैसे पराए वैभव को न देख सकना, मीठे वचन भी कठोर लगना आदि। राम वनवास, दशरथ मरण, भरत का कष्ट सहन, समस्त प्रजा का त्रास उत्पन्न करने वाली दुरभिसंधि रचते हुए कैकेई एवं मंथरा की कुटिलता देखने योग्य है। उन्हें सहज, सरल और हितकर स्थिति भी उलटी लगती है। प्रामाणिक वचनों पर भी उनको विश्वास नहीं होता।

असुर-संस्कृति के अनुयायी किस प्रकार सत्कार्यों में बाधा डालते हैं। इसका चित्रण, दानवों के क्रिया-कलाप का वर्णन 'बालकांड' में रावण के राज्य प्रसार के

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

प्रसंग में किया गया है । मानसकार का कथन है कि रूप से नहीं ऐसे विकृत आचरण वालों को ही असुर माना जाय ।

जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला । सो सब करहि बेद प्रतिकूला ॥
जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहिं । नगर गाँउ पुर आग लगावहिं ॥
सुभ आचरण कतहुँ नहिं होई । देव बिप्र गुरु मान न कोई ॥
नहिं हरि भगति जग्य तप ग्याना । सपनेहु सुनिय न बेद पुराना ॥
बाढ़े खल बहु चोर जुआरा । जे लंपट पर धन पर दारा ॥
मानहिं मातपिता नहिं देवा । साधुन सन करवावहि सेवा ॥
जिन्ह के यह आचरन भवानी । ते जानहु निसिचर सब प्रानी ॥

मनोबल से रहित निष्क्रिय, निरर्थक, हारे, टूटे और थके मनुष्यों को तथा उन लोगों को जो दोष-दुर्गुणों में ग्रसित, कुकर्मरत जीवन जीते हैं, उन्हें रामायण ने जीवित-मृतक बतलाया है । ऐसे जीवित-मृतकों की संख्या चौदह गिनाई है-

कौल काम बस कृपिन बिमूढ़ा । अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा ॥
सदा रोगबस संतत क्रोधी । विष्णु बिमुख श्रुति संत बिरोधी ॥
तनु पोषक निन्दक अघ खानी । जीवित सव सम चौदह प्रानी ॥

ऐसे असुर प्रकृति के दुष्ट दुर्जनों से सदा दूर रहना और उनकी छद्म कुटिलता से सतर्क रहना चाहिए । उनसे घनिष्ठता न बढ़ा कर, उन्हें मुँह न लगाकर अपने को अलग रखना चाहिए । उनसे संपर्क बढ़ाना सब प्रकार अहितकर ही होता है । इसलिए भले ही कष्ट सहकर गुजारा करना पड़े पर इन दुर्जनों से दूर रहने में ही भलाई है ।

रावण जब मारीच को छल के लिए तैयार करने गया तब उसके आचरणों पर टिप्पणी करते हुए मानसकार ने शिवजी के मुख से कहलाया है-

नवनि नीच की अति दुखदाई । जिमि अँकुश धनु उरग बिलाई ॥
भयदायक खल की प्रिय बानी । जिमि अकाल के कुसुम भवानी ॥

काकभुशुंडि जी अपने पूर्व जन्म के प्रसंग में यही तथ्य प्रतिपादित करते हैं-

उदासीन नित रहिअ गोसाईं । खल परिहरिअ स्वान की नाईं ॥

'सुंदरकांड' में राम-विभीषण संवाद में भी यही मार्मिक पीड़ा व्यक्त की गई है ।

बरु भल बास नरक कर ताता । दुष्ट संग जनि देइ विधाता ॥

संत और असंतों की तुलना करते हुए उनकी स्थिति का जमीन-आसमान जैसा अंतर स्पष्ट किया गया है । एक स्वर्ग का देवदूत और दूसरे को नरक का कृमि-कीट बताया गया है । इस संबंध में भगवान राम भरत आदि को बतलाते हैं-

संत असंतन्हि कै असि करनी । जिमि कुठार चंदन आचरनी ॥
काटइ परसु मलय सुनु भाई । निज गुन देइ सुगंध बसाई ॥
ताते सुर सीसन्ह चढ़त, जग बल्लभ श्रीखंड ।
अनल दाहि पीटत घनहिं, परसु बदन यह दंड ॥

इसी प्रकार गरुड़ जी को बतलाते हुए काकभुशुंडि जी कहते हैं-

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

पर उपकार बचन मन काया । संत सहज सुभाउ खगराया ॥
संत सहहिं दुख परहित लागी । पर दुख हेतु असंत अभागी ॥
भूर्ज तरू सम संत कृपाला । पर हित नित सह विपति कराला ॥
दुष्ट हृदय जग आरति हेतू । जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू ॥

सत्संग और कुसंग का प्रतिफल

श्रेष्ठता की संगति और दुष्टता से बचाव सर्वतोमुखी प्रगति का महत्वपूर्ण सोपान है । श्रेष्ठ विचारों के साथ साधन संपर्क बनाए रहने से मनुष्य को पारस को छूकर लोहे से सोना बनने का अवसर मिलने जैसा सत्परिणाम प्राप्त होता है ।

श्रेष्ठ आचरण एवं निर्मल ज्ञान वाले परमार्थ-परायण संत यदि मिल सकें, तो उनसे व्यक्तिगत घनिष्ठता बढ़ाने, संपर्क में आने, साथ रहने का भी प्रयत्न करना चाहिए । आजकल ऐसे संत प्राय: नहीं के बराबर हैं, जिनकी संगति की जा सके । जो हैं वे आत्म कल्याण और विश्व कल्याण के महत्वपूर्ण कार्यों में व्यस्त रहते हैं उनके साथ देर तक रहना न अपने लिए सुविधाजनक हो सकता है, न उनके लिए । इसलिए यह प्रयोजन वर्तमान परिस्थितियों में सत्साहित्य के स्वाध्याय से ही पूरा हो सकता है । जब कभी महामानवों का सान्निध्य जिस भी रूप में उपलब्ध हो सके उसके लिए भी प्रयत्न करना चाहिए ।

आजकल साधु संग के नाम पर ओछे, भ्रांत, अकर्मण्य और हेय स्तर के लोगों के साथ घुलना-मिलना, उनकी सेवा-पूजन करना समझा जाता है । इसी प्रकार सत्संग के नाम पर निरर्थक गप्पबाजी की, बेतुके वचन-प्रवचन की ऐसी बक-झक चलती रहती है जिससे सुनने वाले के चिंतन एवं कर्तृत्व का ऊँचा उठना तो दूर उल्टे भ्रांत धारणाओं में उलझकर अहितकर दिशा में चल पड़ने की शिक्षा मिलती है । इन दिनों सत्संग के नाम पर इन्हीं विडंबनाओं के घटाटोप हर जगह छाए हुए हैं ।

आदर्शवादी व्यक्तियों एवं उत्कृष्ट विचारणाओं का संपर्क, सान्निध्य ही सच्चे अर्थों में साधु संग है । उसी को सत्संगति कहा गया है । यह संपर्क भले ही स्वाध्याय द्वारा साधा जाय या सान्निध्य द्वारा, इससे उपयोगी प्रेरणाएँ मिलती हैं और ऊँचा उठने का अवसर मिलता है । इसलिए रामायण में सत्संगति की महिमा विस्तारपूर्वक बतलाई है ।

अरण्यकांड में श्रीराम की वंदना के लिए जब सनकादि मुनि आये, उस प्रसंग में कहा गया है कि सत्संग के प्रभाव से बंधन टूट जाते हैं । श्रेष्ठ व्यक्तियों के अनुभव से वर्षों के तप का लाभ क्षणों में मिल जाता है–

बड़े भाग पाइअ सतसंगा । बिनहिं प्रयास होइ भव भंगा ॥

दूसरे शब्दों में उसका प्रभाव संस्कृति का अंत कहा है । सांसारिक पीड़ाओं की समाप्ति श्रेष्ठ आचरण-परायण होने से होती है और यह प्रेरणा संतों से मिलती है ।

पुण्य पुंज बिनु मिलइ न संता । सत संगति संसृति कर अंता ॥

संत का साथ मनुष्य को स्वर्ग की ओर और कामी पुरुष का साथ सांसारिक कष्टों की ओर ले जाता है–

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

संत संग अपवर्ग कर, कामी भव कर पंथ ।
कहहिं संत कवि कोविद, श्रुति पुरान सद्ग्रंथ ॥

सुंदरकांड में जब भक्तराज हनुमान जी विभीषण से मिलते हैं तो विभीषण जी अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहते हैं–

अब मोहि भा भरोसा हनुमंता । बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता ॥

मानस के अनुसार सत्संग की नियमित व्यवस्था होनी चाहिए । मोहग्रस्त गरुड़ जी शिव जी के पास समाधान के लिए जाते हैं । वे कहीं जाने की तैयार में थे, अस्तु उन्होंने गरुड़ जी को काकभुशुंडि जी के पास भेज दिया और कहा–

तबहि होइ सब संशय भंगा । जब बहु काल करिअ सतसंगा ॥

यह इसलिए कहा गया कि मनुष्य के हृदय में संशय पैदा होते ही रहते हैं । उनके समाधान भी बराबर होते रहने चाहिए । इसका यह अर्थ नहीं कि थोड़ी देर के सत्संग की उपेक्षा की जाय । वह तो जितना पाया जा सके शुभ और सुखकारी ही है । लंका प्रवेश के समय हनुमान जी से मिलने पर लंकिनी नाम की राक्षसी कहती है ।

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिअ तुला इक संग ।
तुलै न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग ॥

काकभुशुंडि जी का मत है–

संत मिलन सम सुख जग नाहीं ।

यहाँ सत्संग की महिमा का वर्णन हुआ है । वाल्मीकि ने नारद जी के उपदेश से डाका मारना छोड़कर साधना द्वारा ब्रह्मर्षि का पद प्राप्त किया ।

नारद ऋषियों की दासी के पुत्र थे किन्तु ऋषियों की संगति से इनका अंतःकरण निर्मल हो गया तथा उनके उपदेश से महान भगवत भक्त बन गए ।

अगस्त्य के पिता मित्रा वरुण जी ने एक अप्सरा के सौंदर्य के कारण स्खलित वीर्य एक घट में रख दिया था । इस नीच योनि में उत्पन्न होने पर भी सत्संग के प्रभाव से वे महान ऋषि बन गए ।

पौराणिक उपाख्यानों में वाल्मीकि, नारद एवं अगस्त्य के बुरी स्थिति से अच्छी स्थिति तक पहुँचने का कारण उनको प्राप्त हुआ सत्संग ही बतलाया गया है । रामायण में इसी का उल्लेख वंदना-प्रसंग में किया गया है–

सुनि आचरज करै जनि कोई । सत संगति महिमा नहिं गोई ॥
बाल्मीकि नारद घटजोनी । निज निज मुखनि कही निज होनी ॥

सन्मति, सद्गति, कीर्ति, सुयश, संपत्ति हित-साधन के लिए सत्संगति से बढ़कर अन्य कोई उपाय नहीं है, इसी प्रसंग में विश्व की सभी श्रेष्ठ उपलब्धियाँ सत्संग के प्रभाव से प्राप्त दशाई गई हैं–

मति कीरति गति भूति भलाई । जो जेहि जतन जहाँ जेहि पाई ॥
सो जानब सत्संग प्रभाऊ । लोकहु बेद न आन उपाऊ ॥

जैसे लोहा पारस के स्पर्श मात्र से सोना हो जाता है वैसे ही दुष्ट मनुष्य भी यदि संत जनों की संगति कर लें तो वे सज्जन हो जाते हैं । 'बालकांड' में कहा गया है–

सठ सुधरहिं सत संगति पाई । पारस परसि कुधातु सुहाई ॥

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

ईश्वर भक्ति का प्रसाद प्राप्त करने के लिए विशेष रूप से ईश्वर, विश्वासी, प्रभु समर्पित आदर्श जीवन जीने वाले संत, सज्जनों की, महामानवों की संगति आवश्यक होती है। उनके प्रवचनों से नहीं वरन् उनके चरित्र को निकट से देखने पर अनुसरण की, अनुगमन की प्रेरणा मिलती है और संपर्क में आने वाला व्यक्ति भी ईश्वर परायण बनता है। इसी दृष्टि से ईश्वर भक्ति और सत्संगति को एक दूसरे का पूरक बताया गया है। 'अरंण्यकांड' में भगवान राम शबरी को नवधा भक्ति का उपदेश करते हुए कहते हैं–

प्रथम भगति संतन कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥

उत्तरकांड में श्री काकभुशुंडि जी प्रभु भक्ति की प्राप्ति बिना सत्संग को असंभव बतलाते हैं–

भक्ति सुतंत्र सकल सुख सानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी॥
अस बिचारि जोइ कर सत्संगा। राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा॥

यही भाव दूसरे शब्दों में इस प्रकार मिलता है–

राम भगति के ते अधिकारी। जिनके सतसंगति अति प्यारी॥

पुनः काकभुशुंडि जी सारे धर्म-कर्म का फल हरिभक्ति बतलाते हुए उसको सत्संग के बिना दुर्लभ बतलाते हैं–

सब कर फल हरि भगत सुहाई। सो बिनु संत न काहू पाई॥

स्वयं भगवान राम 'अरण्यकांड' में लक्ष्मण जी को भक्ति प्राप्ति का उपाय संतों की अनुकूलता बतलाते हैं–

भगति तात अनुपम सुखमूला। मिलइ जो संत होइ अनुकूला॥

यही सम्मति गरुड़ जी को शिव जी देते हैं–

बिनु सत्संग न हरिकथा, तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गए बिनु राम पद, होय न दृढ़ अनुराग॥
बिनु सत्संग बिबेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥

जहाँ सत्संग की प्रशंसा है वहाँ कुसंग की निंदा भी कम नहीं है। बुरे व्यक्तियों के, बुरे वातावरण के, बुरे साहित्य के संपर्क में आने से मनुष्य का अधःपतन एवं विनाश भी कम नहीं होता। 'अयोध्याकांड' में कुबरी की सीख मानकर कैकेई अनर्थ करने पर उतर आती है, तब मानसकार की उक्ति है–

को न कुसंगति पाइ नसाई। रहइ न नीच मते चतुराई॥

किष्किन्धाकांड में 'वर्षा-शरद वर्णन' में सत्संग और कुसंग के प्रभाव से ज्ञान की वृद्धि और क्षय होने का उल्लेख किया गया है–

'उपजइ बिनसइ ज्ञान जिमि, पाइ सुसंग कुसंग।'

कुसंग से हानि होती है और सुसंग से लाभ, यह बात संसारी और ज्ञानी सभी जानते हैं। उदाहरणार्थ वायु की सहज गति ऊपर है अतः धूल उसकी संगति से आकाश में पहुँच जाती है, किन्तु अधोगामी जल के संसर्ग से वह कीचड़ में मिल जाती है। वही शुक, सारिका साधुओं के यहाँ राम-नाम बोलते हैं और दुष्टों के यहाँ गालियाँ देने लगते हैं। धुँआ पानी के संयोग से कालिख बन जाता है, किन्तु उसका

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

भी सदुपयोग किया जाय तो स्याही बन कर लाभ देता है । वही पानी अग्नि और वायु के संयोग से बादल बनकर जीवन दाता बन जाता है । सारांश यह कि संसार के सब पदार्थ ग्रह औषधि, जल, वायु, वस्त्र अच्छा या बुरा साथ पाकर भले या बुरे रूप में सामने आ जाते हैं ।

हानि सुसंग कुसंगति लाहू । लोकहु बेद बिदित सब काहू ॥
गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा । कीचहि मिलइ नीच जल संगा ॥
साधु असाधु सदन सुकसारी । सुमिरिहिं राम देहिं गन गारी ॥
धूम कुसंगति कारिख होई । लिखिअ पुरान मंजु मसि सोई ॥
सोइ जल अनल अनिल संघाता । होई जलद जग जीवन दाता ॥
ग्रह भेषज जल पवन पट, पाइ सुयोग कुयोग ।
होंहि कुबस्तु सुबस्तु जग, लखहि सुलच्छन लोग ॥

सत्संग का लाभ प्राप्त करने के लिए अपने मन में आवश्यक कोमलता, पात्रता, गुण ग्राहकता होनी चाहिए अन्यथा उस सुयोग का भी समुचित लाभ न मिल सकेगा ।

खलउ करहि भल पाइ सुसंगू । मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू ॥

सत्संग का लाभ वही उठा सकता है जो उसके लिए प्रयत्नशील हो । कुछ ऐसे ही जड़गति होते हैं जो उससे अप्रभावित ही बने रहते हैं । ऐसों से सावधान रहने का परामर्श 'लंकाकांड' में रावण के प्रसंग में दिया गया है–

फूलहि फलहिं न बेत, जदपि सुधा बरसिय जलद ।
मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलें बिरंच सम ॥

साधुता और असाधुता किसी वंश अथवा भेष से नहीं, स्वभाव से परखी जाती है । एक साथ पैदा होने वाले एक ही वंश के व्यक्ति गुण, कर्म की दृष्टि से एकदम भिन्न भी हो सकते हैं । साधु-असाधु के संबंध में मानसकार की स्पष्ट उक्ति है–

उपजहिं एक संग जग माहीं । जलज जौंक जिमि गुन बिलगाहीं ॥
सुधा सुरा सम साधु असाधू । जनक एक जग जलधि अगाधू ॥
भल अनभल निज निज करतूती । लहत सुजस अपलोक बिभूती ॥

एक ही स्थान पर पैदा हुए व्यक्ति कमल और जोंक की तरह भिन्न स्वभाव तथा सुधा और शराब जैसे विपरीत प्रभाव वाले संत या असंत हो सकते हैं । उनको अपनी करनी के अनुसार ही यश या अपयश मिलता है । अत: संगति का चुनाव विवेकपूर्वक ही करना चाहिए ।

मनुष्य जीवन का सदुपयोग

चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने के उपरांत एक बार यह सुर दुर्लभ मनुष्य शरीर इसलिए मिलता है कि जीव इस द्वार से होकर अपने लक्ष्य को पूरा कर सके, ईश्वर तक पहुँच सके, अपूर्णता से छूट कर पूर्णता का अधिकारी बन सके । इस अवसर को पेट और प्रजनन जैसे कृमि-कीटकों के क्रिया-कलाप में उलझे रहकर नष्ट कर देना सर्वथा अदूरदर्शिता पूर्ण है । वासना और तृष्णा के, विषय-विकारों के, लोभ-मोह के इस कुचक्र में इस सुअवसर को गँवा दिया गया तो इसे एक भयंकर दुर्घटना ही कहना चाहिए ।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

इस भूल से रामायण सचेत करती है और उस उस प्रयास में संलग्न होने की प्रेरणा देती है जिससे मानव-जीवन को सार्थक बनाया जा सके। मानसकार ने मनुष्य शरीर की उपयोगिता और महत्ता स्थान-स्थान पर दर्शायी है। 'उत्तरकांड' में स्वयं भगवान राम कहते हैं-

बड़े भाग मानस तन पावा। सुरदुर्लभ सद्ग्रंथन गावा॥

'उत्तरकांड' में काकभुशुंडि जी भी मानसरोवर को सबसे श्रेष्ठ बतलाते हुए उसके द्वारा नर्क, स्वर्ग अथवा मोक्ष तथा ज्ञान-वैराग्य एवं भक्ति आदि कुछ भी प्राप्त करना संभव मानते हैं-

नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत जेही॥
नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी। ग्यान बिराग भगति सुभ देनी॥

इसीलिए तुलसीदास जी 'विनय पत्रिका' के एक पद में अपने मन को सावधान करते हुए कहते हैं कि यदि अवसर निकल गया, इस शरीर का उचित लाभ न उठाया गया तो फिर पछताना ही हाथ लगेगा-

सहसबाहु दस-बदन आदि नृप, बचे न काल बली ते।
हम हम करि धन धाम सवाँरत, अंत चले उठि रीते॥
सुत बनितादि जानि स्वारथ रत, न करु नेह सब ही ते।
अंतहु तोहि तजैंगे पामर तू न तजै अब ही ते॥
अब नाथहिं अनुराग जाग जड़, त्याग दुरासा जीते।
बुझै न काम अगिन तुलसी कहुँ, विषय भोग बड़ घी ते॥

'विनय पत्रिका' में ही तुलसीदास जी आत्म-उद्‌बोधन करते हुए मन को इस चक्र से बचकर भगवान की ओर घुमाने की सलाह देते हैं-

यादि ते मैं हरि ग्यान गँवायो।
परिहरि हृदय कमल रघुनाथहिं, बाहर फिरत बिकल भयो धायो॥

मनुष्य शरीर बड़ा मूल्यवान है। इसके माध्यम से श्रेष्ठ लक्ष्यों की ओर बढ़ना चाहिए। विषय-वासनाओं के सुख की कामना, वह संसार में हो या स्वर्ग में, शरीर का दुरुपयोग है। यह भाव 'मानस' में 'रामगीता' के अंतर्गत स्पष्ट प्रकट किया गया है-

एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई॥
नर तन पाय बिषय मन देहीं। पलट सुधा ते सठ विष लेंहीं॥
ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा गहइ परस मनि खोई॥

अपना मन जब सांसारिक उपलब्धियों का हवाला देकर अपनी महत्ता बतलाना चाहता है तो तुलसीदास जी उसे धिक्कारते हुए 'विनय पत्रिका' में लिखते हैं कि तूने मनुष्य शरीर के लायक किया ही क्या है-

काज कहा नरतनु धरि सार्‌यो।
पर उपकार सार श्रुति को जो सो धोखेहु न विचार्‌यो॥
द्वैतमूल भयसूल, सोगफल भवतरु टरै न टार्‌यो।
राम भजन तीछन कुठार लै, सो नहिं काटि निवार्‌यो॥
संसय सिन्धु नाम बोहित भजि, नित आतमा न तार्‌यो।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

जनम अनेक बिबेक हीन बहु, जोनि भ्रमत नाहिं हार्‌यो ॥
देखि आन को सहज संपदा द्वेष अनल मन जार्‌यो ।
सम दम दया दीनपालन सीतल हिय हरि न सँभार्‌यो ॥
प्रभु गुरु पिता सखा रघुपति तैं मन क्रम बचन बिसार्‌यो ।

साधक अपने पतन के लिए दूसरे को दोषी न ठहराये, इसलिए वे अन्य पद में अपना भला न कर सकने वाले की निंदा करते हैं–

नवमी नव द्वार पुर बसि जेहि न आपु भल कीन्ह ।
ते नर जोनि अनेक भ्रमत, दारुन दुख लीन्ह ॥

अपनी भूल अनुभव होने पर साधक फिर प्रभु को मिथ्या दोष नहीं लगाता । यही भाव 'विनय पत्रिका' के निम्न पद में प्रकट किया गया है–

'माधव मो समान जग माहीं ।'

....

नाहिन कछु औगुन तुम्हार, अपराध मोर मैं गाना ।
ग्यान भवन तनु दियेहु नाथ सोउ पाय न मैं प्रभु जाना ॥
बेनु करील श्री खंड बसंतहि दूषन मृषा लगावै ।
सार रहित हत भाग्य सुरभि, पल्लव सो कहुँ किमि पावै ॥

तुलसी कहते हैं–हे प्रभु ! तुम्हारा कोई दोष नहीं है आपने मुझे ज्ञान का घर मनुष्य शरीर दिया, किन्तु इसे पाकर भी मैं आपको न जान सका ।

इस प्रकार भगवान जीव को मनुष्य शरीर देकर अपनी कृपा कर चुके अब अपना उद्धार करने की जिम्मेदारी हमारी है । हमें अपने प्रयत्नों द्वारा अपना सुधार करना चाहिए, भगवान की कृपा तो हम पर है ही ।

एक अन्य पद में साधक संसार के स्वार्थपूर्ण संबंध को समझकर पश्चात्ताप करते हुए कहता है–

"संसार के सभी संबंधियों ने तुझे विषय-भोगों के मार्ग की ही शिक्षा दी जिनके फलस्वरूप नरक ही मिलता है । जिस मार्ग में चलने से तेरा वास्तविक हित होने वाला है उस अध्यात्म मार्ग की शिक्षा तुझे किसी ने नहीं दी ।"

जाते निरय निकाय निरंतर सोइ इन्ह तोहि सिखायो ।
तुव हित होय कटै भव बंधन सो मग तोहि न बतायो ॥

इस प्रकार स्वार्थ भरे दृष्टिकोण में फँसकर अलभ्य अवसर खो देने के कारण दु:खी अंत:करण के भाव 'विनय पत्रिका' के इस पद में प्रकट किए गए हैं–

लाभ कहा मानुष तन पाये ।
काय वचन मन सपनेहुँ कबहुँक घटत न काज पराये ॥
जो सुख सुरपुर नरक गेह बन आवत बिनहिं बोलाये ।
तेहि सुख कहँ बहु जतन करत मन, समुझत नहिं समुझाये ॥
पर दारा, पर द्रोह, मोहबस किए मूढ़ मन भाये ।
गरभवास दुख रसि जातना तीब्र बिपत्ति बिसराये ॥

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

भय निद्रा मैथुन अहार सबके समान जग जाये ।
सुर दुरलभ तनु धरि न भजे हरि, मद अभिमान गँवाये ॥
गई न निज पर बुद्धि सुद्ध ह्वै रहे न राम लय लाये ।
तुलसीदास यह अवसर बीते, का पुनि के पछिताये ॥

'रामचरितमानस' में भगवान राम अपने प्रजाजनों को भी इसी प्रकार सावधान करते हुए कहते हैं कि यदि समय चूक गए तो पछताना और दूसरों को दोष लगाना ही हाथ लगेगा–

साधन धाम मोक्ष कर द्वारा । पाइ न जो परलोक सँवारा ॥
सो परत्र दुख पावई, सिर धुनि धुनि पछताइ ।
कालहि कर्महि ईश्वरहि, मिथ्या दोष लगाइ ॥

भगवान आगे और भी स्पष्ट करते हैं कि मनुष्य शरीर के साथ प्रभु अनुग्रह तथा सद्‌गुण रूप में कर्णधार भी मिल जाता है । फिर भी यदि कोई अपना उद्धार न कर सके तो उसे आत्महत्या का दोषी माना जाना ही उचित है–

नरतनु भव बारिधि कहुँ बेरो । सनमुख मरुत अनुग्रह मेरो ॥
करनधार सद्‌गुरु दृढ़ नावा । दुर्लभ साज सुलभ करि पावा ॥
जो न तरै भव सागर, नर समाज अस पाइ ।
सो कृत निन्दक मंद मति, आत्माहन गति जाइ ॥

अस्तु समझदार व्यक्ति को चाहिए कि यह तथ्य समझकर आगे के लिए सतर्क हो जाय । जितनी आयु निरर्थक बीत गई उस पर पश्चात्ताप प्रकट करते हुए बुद्धिमान प्राणी निश्चय करता है कि जो शेष है उसे नष्ट न करूँगा । उसके एक-एक क्षण का सदुपयोग करूँगा । 'विनय पत्रिका' के इस पद में यह भाव बड़ी प्रखरता से उभारा गया है–

अब लौं नसानी अब न नसैहौं ।
राम कृपा भव निशा सिरानी, जागे पुनि न डसैहौं ॥
पायउँ नाम चारु चिंतामनि, उर कर ते न खसैहौं ।
स्याम रूप रुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहिं कसैहौं ॥
परबस जानि हँस्यो इन इंद्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहौं ।
मन मधुकर पन कै तुलसी रघुपति पद कमल बसैहौं ॥

गुरु का महत्व और स्वरूप

गुरु को भारतीय धर्म में बहुत सम्मान दिया गया है । उनकी वंदना, पूजा एवं सेवा करने के लिए शिष्यों को बहुत उत्साहित किया गया है । उनका न केवल सम्मान करने, श्रद्धा रखने की बात है, वरन् मार्गदर्शन को अपनाने और अनुशासन में चलने को भी शिष्य का परम पावन कर्तव्य माना गया है ।

सद्‌गुरु अंतरात्मा में अवस्थित उस ईश्वर प्रकाश को कहते हैं, जो उचित-अनुचित का बोध कराता है, कुमार्ग छोड़कर सुमार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है । वस्तुतः सद्‌गुरु का जागरण और उसका परिपुष्ट होना ही आत्मोत्कर्ष के लिए सबसे

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

बड़ा साधन है । इसलिए सद्‌गुरु की शरण में जाने की उनके प्रति श्रद्धालु रहने और अनुशासन मानने की बात अध्यात्म-क्षेत्र में पग-पग पर कही गई है ।

आध्यात्मिक गुरु वे व्यक्ति हो सकते हैं जो अध्यात्म तत्वज्ञान से अपनी अंत: चेतना को सुविकसित बना चुके हैं । व्यक्ति और परिस्थिति के अनुरूप मार्गदर्शन कर सकने की सूक्ष्म और प्रखर बुद्धि जिनमें मौजूद है, जो चरित्रवान हैं, सद्‌गुण संपन्न हैं और अपने प्रतिभाशाली व्यक्तित्व के कारण नेतृत्व कर सकने की क्षमता विकसित कर चुके हैं । ऐसे महामानवों को अपना मार्गदर्शक नियुक्त करने की भारतीय संस्कृति की पुण्य परंपरा है । इसके लिए गुरुदीक्षा ली जाती है, उन्हें दीक्षा-संस्कार के द्वारा वरण किया जाता है । गुरु-शिष्य इस पुण्य संस्कार द्वारा परस्पर संबंधित होते हैं और महान प्रयोजनों की पूर्ति में एक दूसरे की सामर्थ्य भर सहायता करते हैं । माता-पिता की तरह गुरु को भी अभिभावकों में गिना जाता है । जन्म देने के कारण माता को ब्रह्मा, भरण-पोषण की व्यवस्था करने के कारण पिता को विष्णु और अज्ञान का संहार करके सद्ज्ञान का प्रकाश देने के कारण गुरु को शिव कहा गया है । रामायण में गुरु-तत्व को बहुत महत्व दिया गया है । उनके प्रति निष्ठा रखने के लिए अध्यात्म-प्रेमियों को प्रेरणा दी गई है-

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकर रूपिणम् ।
यमाश्रितोहि वक्रोपि चन्द्र: सर्वत्र बन्द्यते ।।

तुलसीदास जी के मतानुसार गुरु भी व्यक्ति नहीं एक शाश्वत शक्ति है जो पात्रतानुसार व्यक्तियों में प्रतिबिम्बित होती रहती है । इसीलिए उसे नित्य कहकर संबोधित किया । शरीर सत्य नहीं है, इसलिए गुरु के संबोधन के पीछे किसी शरीर विशेष का आग्रह नहीं है । व्यक्ति के पीछे सक्रिय नित्य शक्ति को ध्यान में रखना चाहिए ।

गुरु बोधमय तो होता ही है । शंकर रूपिणम् उसे इसलिए कहा गया है कि वह ज्ञान का कल्याणकारी उपयोग करता है । इसके अतिरिक्त शिव को पिछले श्लोक में विश्वासरूप कहा है, जिसके बिना ईश्वर साक्षात्कार संभव नहीं । अंत:करण में स्थिति आत्मतत्व को अनुभव कराने अथवा ईश्वर साक्षात्कार में गुरु की प्रमुख भूमिका होती है । इस दृष्टि से भी उन्हें शिवरूप कहना उचित है ।

उनके आश्रित होने पर टेढ़ा चन्द्रमा भी पूज्य हो जाता है । इसका अर्थ यह है कि गुरुत्व संपन्न टेढ़े व्यक्तियों को भी दिशा देकर उनसे ऐसे गौरवमय कर्म कराने में कुशल होते हैं, जिनसे उनकी कीर्ति सारे संसार में फैल जाय । इसका आशय यह नहीं कि गुरु का आश्रय टेढ़ा व्यक्ति ही ले, किन्तु यह है कि टेढ़ा होते हुए भी यदि निष्ठापूर्वक शिष्य रूप में गुरु के प्रति समर्पित हो जाय तो भी जीवन का श्रेष्ठ और गौरवमय उपयोग संभव है ।

गुरु को नर रूप हरि कहा है अर्थात मनुष्य के रूप में ईश्वरीय चेतना । गुरु वही होता है जिसके अंदर ईश्वरीय प्रकाश प्रकट हो जाय । किसी कुल अथवा जाति की परंपरा से गुरु बनाते चलना उचित नहीं ।

गुरु के वचनों से महामोह का निवारण हो जाता है । स्वयं मोहग्रस्त अथवा

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

लोगों को उलझाने वाला व्यक्ति गुरु नहीं कहला सकता ।

इस प्रकार गुरु से केवल मोह नाश की आंतरिक निर्मलता प्राप्त करने की आशा करनी चाहिए । मन में विकार पैदा करने वाली तरह-तरह की इच्छाओं की पूर्ति की आशा नहीं की जानी चाहिए । मानस की प्रारंभिक वंदना में यह भाव व्यक्त किए गए हैं-

बंदउँ गुरु पद कंज, कृपा सिंधु नररूप हरि ।
महामोह तम पुंज, जासु वचन रविकर निकर ॥

इसी प्रसंग में गुरु की चरण-रज का जो प्रभाव बताया गया है उससे भी इसी मत की पुष्टि होती है-

जन मन मजु मुकुर मल हरनी । किये तिलक गुन गन बस करनी ॥

गुरु की चरण-रज अर्थात मार्गदर्शक की क्षमता भावनात्मक स्तर पर साधक के मन-दर्पण की मलिनता हटाती है और उसको मस्तिष्क में धारण करने से गुणों को वश में किया जा सकता है ।

इसी प्रसंग में आगे **'सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती'-'दलन मोहतम सो सुप्रकासू'-'उघरहि बिमल बिलोचन ही के'-'सूझहि रामचरित मनि मानिक'** आदि कहकर इसी मत की पुष्टि की है और स्वयं भी वही पाया है । उसके प्रभाव से विवेक को निर्मल करके राम चरित्र को लोकोपयोगी रूप में प्रस्तुत किया है-

तेहि कर बिमल बिबेक बिलोचन । बरनउँ राम चरित भव मोचन ॥

मानसकार स्पष्ट रूप से गुरु के प्रति व्यक्तिपरक अथवा स्वार्थपरक दृष्टिकोण के समर्थक नहीं हैं । गुरु के सहयोग पर अपने मन की निर्मलता प्राप्त की जाती है । दर्पण साफ हो तो बिम्ब साफ-साफ दिखता है । मन स्वच्छ हुए बिना भगवान का चरित्र भी लोकोपयोगी ढंग से प्रस्तुत नहीं किया जा सकता ।

श्रीगुरु चरन सरोज रज, निज मन मुकुर सुधार ।
बरनौं रघुबर बिमल यश, जो दायक फलचार ॥

शास्त्र-वचनों पर उतना विश्वास नहीं हो पाता क्योंकि उनमें देश, काल, पात्र की आवश्यकताओं एवं संदर्भों में अनेक प्रकार के मत व्यक्त किए जाते हैं । यहाँ तक कि वे परस्पर विरोधी भी प्रतीत होते हैं । यद्यपि उस विरोधाभास में भी परिस्थितियों की भिन्नता के अनुरूप एक ही रोग के कई उपचार ही प्रस्तुत किए गए होते हैं ।

सामयिक परिस्थिति को, व्यक्ति की मनःस्थिति को ठीक तरह समझकर विवेकवान व्यक्ति जो परामर्श देते हैं वह अधिक सही एवं श्रेयस्कर होता है । अस्तु उस पर निष्ठा विश्वासपूर्वक चला भी जा सकता है । पार्वती जी को नारद ने तप करके शिवजी को वर रूप में प्राप्त करने का परामर्श दिया, उसका औचित्य समझने के उपरांत उन्होंने वैसा ही करने का दृढ़ निश्चय कर लिया । जब उन्हें उस मार्ग से विरत होने के लिए कहा गया तो भी वे गुरु द्वारा मिले परामर्श पर दृढ़ ही बनी रहीं । गुरु के वचन को सर्वोपरि मानती हुई सप्तऋषियों से कहती हैं-

तजउ न नारद कर उपदेसू । आप कहहि सत बार महेसू ॥

दुनियाँ में बिना सोचे-समझे तरह-तरह की सलाहें देने वाले व्यक्ति कम नहीं

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

हैं । इसलिए प्रामाणिक व्यक्ति की इस बात पर विश्वास रखकर कार्य करना आवश्यक है । अस्थिर चित्त व्यक्ति कष्ट की कल्पना के कारण अपने आचरण से डिग जाते हैं । पार्वती जी उस पर दृढ़ हैं–

नारद बचन न मैं परिहरऊँ । बसउ भवन उजरउ नहिं डरऊँ ॥
गुरु के बचन प्रतीति न जेही । सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही ॥

गुरु के संबंध में यह उक्ति प्रसिद्ध है–

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागों पाँय ।
बलिहारी गुरु आपकी, जिन गोविन्द दिये मिलाय ॥

भगवान से अधिक गुरु को इसलिए कहा गया है कि उनका उपदेश, चरित्र, व्यक्तित्व, तप एवं ज्ञान शिष्य में ईश्वर विश्वास जगाता है, भगवत् प्राप्ति के लिए प्रोत्साहित करता है, मार्ग दिखाता है और उँगली पकड़कर जीवन लक्ष्य के पथ पर चलने में व्यावहारिक सहायता करता है । यही भाव 'मानस' में ऋषि बाल्मीकि जी 'राम-निवास' बतलाते समय व्यक्त करते हैं–

तुम्ह ते अधिक गुरुहिं जिय जानी । सकल भायँ सेवहिं सनमानी ॥

पिछले अशुभ कर्मों के फलस्वरूप बने दुखद प्रारब्ध को भी वर्तमान सत्कर्मों के प्रायश्चित्त द्वारा बदला जा सकता है । भाग्य निर्माण मनुष्य के अपने हाथ में होने से उसकी स्थापना एवं परिवर्तन करना भी संभव है । मन:स्थिति एवं क्रिया-प्रक्रिया बदलने से दु:खों का दलन हो सकता है । इसके लिए जो आवश्यक मार्गदर्शन कर सके, सहयोग दे सके उस गुरु की आशीस की सहायता से शिष्य का सब प्रकार भला ही होता है । वशिष्ठ जी के लिए ऐसा ही कहा गया है–

दलि दुख सजइ सकल कल्याना । अस असीस राउर जग जाना ॥
सो गुसाँइ बिधि गति जेहि छेकी । सकइ को टारि टेक जो टेकी ॥

इतना आत्मविश्वास और आत्मज्ञान किन्हीं बिरलों में ही होता है कि बिना किसी की सहायता के अपने आप ही आत्मनिर्माण और आत्मकल्याण का लक्ष्य पूरा कर सकें । इसके लिए किसी कुशल मार्गदर्शक की जरूरत पड़ती है । कुशल चिकित्सक भी प्राय: अपनी चिकित्सा आप नहीं कर पाते । उन्हें किसी अन्य सहायक की आवश्यकता पड़ती है । अपनी स्थिति को ठीक तरह समझना तथा उसे बदलना प्राय: अपने लिए कठिन पड़ता है । दर्पण के बिना अपना चेहरा भी तो दिखाई नहीं पड़ता और प्रकाश की सहायता के बिना अँधेरी रात में अपने मजबूत पैर भी तो सही तरह सही दिशा में चल नहीं पाते । इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए गुरु की अनिवार्य आवश्यकता एवं उपयोगिता को महत्व दिया गया है–

गुरु बिनु भवनिधि तरइ न कोई । जो बिरंचि संकर सम होई ॥

भारत की गौरव-गरिमा जिन दिनों उच्च शिखर पर थी उन दिनों यह परंपरा थी कि समर्थ, सत्तावान, धनपति, प्रतिभावान एवं साधन संपन्न लोग विचारशील तत्वदर्शियों से परामर्श प्राप्त करते थे और उसी आधार पर अपनी गतिविधियाँ निर्धारित करते थे । सामर्थ्यवान जब अपने साधन-मद में कुछ भी कर गुजरने की उच्छृंखलता अपनाने लगते हैं, तो पतन एवं विनाश के संकट सामने आ उपस्थित होते हैं ।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

प्राचीनकाल में दूरदर्शी सविज्ञ गुरुजनों का परामर्श एवं सहकार हर क्षेत्र में प्राप्त किया जाता था और उन्हें समुचित सम्मान दिया जाता था । फलस्वरूप सत्प्रवृत्तियाँ पनपती थीं और सुख-शांति का वातावरण उत्पन्न होता था ।

राजा दशरथ गुरु वशिष्ठ की प्रसन्नता देखकर संतुष्ट होते हैं और नम्रतापूर्वक आदेश माँगते हैं-

मुनि प्रसन्न लखि सहज सनेहू । कहेउ नरेस रजायसु देहू ॥
सब बिधि गुरु प्रसन्न जिय जानी । बोले राउ रहँसि मृदु बानी ॥

व्यक्ति चरित्रवान और श्रद्धालु तो सहज ही हो सकता है, जिन विषम परिस्थितियों और मन:स्थितियों में वह घिरा होता है उनसे ऊँचा उठकर तात्विक विश्लेषण करना और विवेक सम्मत निष्कर्ष निकालना प्राय: अपने संबंध में संभव नहीं हो पाता । क्योंकि अपने संबंध में विचार करते समय अनेक पूर्वाग्रह, स्वभाव, प्रवाह एवं स्वार्थ जुड़कर चिंतन दृष्टि को धूमिल कर देते हैं । ऐसी दशा में सही मार्गदर्शन पाने के लिए किसी परिष्कृत ज्ञानवान की सलाह अपेक्षित होती है । चित्रकूट प्रसंग में श्रीराम गुरु वशिष्ठ से ही उचित निष्कर्ष निकालने और उचित परामर्श देने की प्रार्थना करते हैं और उसे मानने का विश्वास दिलाते हैं-

सुनि मुनि बचन कहत रघुराऊ । नाथ तुम्हारेहिं हाथ उपाऊ ॥
सब कर हित रुख राउरि राखें । आयसु किये मुदित फुर भाखें ॥
प्रथम जो आयसु मो कहुँ होई । माथे मानि करौ सिख सोई ॥

श्रीराम कहते हैं-तात ! पिता के बाद हमारी सारी बात गुरुजी की कृपा से बनी है । नहीं तो प्रजा, नगर निवासी, परिवार हमारे साथ ही सब बरबाद होते । अकाल में सूर्यवंश के सूर्य महाराज दशरथ का अस्त होना संसार में किसके लिए दु:खदायी नहीं हुआ । विधाता ने बहुत उत्पात कराया फिर भी मिथिलापति जनक और आपने सँभाला । जो लोग राज्य-कार्य, धर्म, धरती, धन, भवन आदि सब कार्यों को गुरु के प्रभाव से करते हैं उनका अंत में कल्याण ही होता है । भरत को इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए वे कहते हैं-

तात तात बिनु बात हमारी । केवल गुरुकुल कृपा सँभारी ॥
नतरु प्रजा परिजन परिवारू । हमहि सहित सब होत खुआरू ॥
जो बिनु अबसर अथँव दिनेसू । जग कहँ कहहु न होइ कलेसू ॥
तस उतपातु तात बिधि कीन्हा । मुनि मिथिलेस राखि सब लीन्हा ॥
राज काज सब लाज पति, धरम धरनि धन धाम ।
गुर प्रभाउ पालिहिं सबहिं, भल होइहिं परिनाम ॥

गुरु ऐसे समर्थ और उत्तरदायी व्यक्ति ही कहला सकते हैं । उन्हीं के प्रति शिष्य श्रेष्ठ भाव भी रखते हैं ।

भरत जी राम के कथानुसार गुरु वशिष्ठ के ही हाथों में अपना भी निर्णय सौंप देते हैं । वे कहते हैं-" श्रीराम जी का रुख धर्म और व्रत की रक्षा करते हुए तथा मुझे पराधीन समझकर सभी के कल्याण का कार्य कराने के लिए है । इसलिए गुरुजी सबके प्रेम को पहचान कर आदेश दें ।" यहाँ औचित्य का ही आग्रह है-

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

राखि राम रुख धरम ब्रत, पराधीन मोहि जानि ।
सबके सम्मत सर्ब हित, करिअ प्रेमु पहिचानि ॥
उचित होई सोइ कीजिअ नाथा । हित सब ही कर रौरे हाथा ॥

गुरु वशिष्ठ अपने उत्तरदायित्व के प्रति सतत सजग हैं । शोक संतप्त भरत को उन्होंने अनेक प्रकार से उपदेश देकर समझाया–

मुनि बहु भाँति भरत उपदेसे । कहि परमारथ बचन सुदेसे ॥

जब सारा समाज दुःख से विचलित हो रहा है, तब गुरु अपने संतुलन को बनाये रहते हैं और अन्य सबके शोक को दूर करने में भी समर्थ होते हैं ।

तब बसिष्ठ मुनि समय सम, कहि अनेक इतिहास ।
सोक ने बारेउ सबहिं कर, निज बिग्यान प्रकास ॥

अयोध्या में छाये हुए शोक–संताप से घिरे लोग जब किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहे थे तो उनको मार्ग बताने के लिए वशिष्ठ, वामदेव आदि गुरुजन आते हैं और मंत्रियों तथा विज्ञजनों को बुलाकर आवश्यक विचार–विनिमय करते हैं–

करत बिलाप बहुत एहि भाँती । बैठेहि बीत गई तब राती ॥
बामदेव बसिष्ठ तब आये । सचिब महाजन सकल बुलाए ॥

महाराज जनक के चित्रकूट आगमन पर शोक संतप्त अयोध्या तथा जनकपुर दोनों परिवारों ने एक दिन का उपवास किया । प्रातःकाल गुरु वशिष्ठ ने ही तब सबके पास फलाहार भेजा । इससे प्रतीत होता है कि संपूर्ण प्रबंध उनके हाथों में था ।

गुरुजन न केवल परामर्श देते थे वरन् आवश्यकतानुसार व्यवस्था का भार भी अपने हाथ में लेकर अपनी व्यवहार कुशलता का परिचय देते थे ।

दल फल मूल कंद बिधि नाना । पावन सुंदर सुधा समाना ॥
सादर सब कहँ रामगुरु पठए भरि भरि भार ।
पूजि पितर सुर अतिथि गुर लगे करन फरहार ॥

मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिए सत्तावान लोग प्रायः गुरु आश्रमों में जाया करते थे । दशरथ जी भी अक्सर गुरु के पास स्वयं जाते थे । वे जब अपना कोई उत्तराधिकारी न देखकर विकल हुए तब का प्रसंग है–

गुरु गृह गयउ तुरत महिपाला । चरनि लाग करि बिनय बिसाला ॥

जब कोई महत्वपूर्ण समस्या आती तो एक गुरु का परामर्श पर्याप्त न मानकर अनेक विद्वानों को आमंत्रित किया जाता । राम जन्म के समय ऐसा ही किया गया ।

गुरु बसिष्ठ कहँ गयउ हँकारा । आए द्विजन सहित नृप द्वारा ॥

इसी प्रकार सीता–स्वयंबर के बाद जनक जी के दूत विवाह–पत्रिका लेकर अयोध्या पहुँचे और दोनों भाइयों के गुणगान किए, तब भी राजा स्वयं आसन से उठकर पत्रिका गुरु वशिष्ठ जी को देते हैं ।

तब उठि भूप बसिष्ठ कहँ, दीन्ह पत्रिका जाइ ।
कथा सुनाई गुरहि सब, सादर दूत बुलाइ ॥

गुरु के उपदेश को मानकर ही अयोध्या की प्रजा पुनः पादुका के प्रतीक रूप में मुख्य प्रबंधक भरत के माध्यम से राम जी के राज में सुखपूर्वक रहने को तैयार हुई । न

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

केवल राजा वरन् प्रजा भी इन वास्तविक, लोक नायक गुरुजनों का आदेश-परामर्श शिरोधार्य करती थी ।

नगर नारि नर गुर सिख मानी । बसे सुखेन राम रजधानी ॥

मनुष्यों के कष्ट और पतन के कारण संशय और भ्रम ही प्रधानतः बन जाते हैं । शरद ऋतु में जिस प्रकार उद्भिज जीव ठंड के मारे मर जाते हैं, उसी प्रकार सद्गुरु प्राप्त होने पर भ्रम और संशयों का निवारण हो जाता है । वर्षा-शरद वर्णन में श्रीरामचन्द्र जी लक्ष्मण को यह तथ्य उदाहरण सहित समझाते हैं-

भूमि जीव संकुल रहे, गए शरद रितु पाइ ।
सद्गुरु मिलें जाहि जिमि, संशय भ्रम समुदाइ ॥

गुरु और शिष्य का संबंध आदेशकर्त्ता एवं उसका पालन करने वाले का ही नहीं है । दोनों विचार-विमर्श करके किसी उचित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं और औचित्य के आधार पर गुरु भी शिष्य के परामर्श को स्वीकार करके सराहते हैं ।

भरत ने जब चित्रकूट चल कर राम को वापस लाने का प्रस्ताव किया तो वशिष्ठ ने उसे उचित माना, सराहा और स्वीकार किया ।

अबसि चलिअ बन राम जहँ, भरत मंत्र भल कीन्ह ।
सोक सिंधु बूड़त सबहि, तुम्ह अवलंबनु दीन्ह ॥

आमतौर से अपने पाप, दोषों को हर कोई छिपाता है, क्योंकि इससे बात के फैलने और निन्दा होने का डर रहता है । लोकापवाद से अपना व्यक्तित्व दूसरों की आँखों में गिरता है । उसके कारण दूसरों के सहयोग में कमी पड़ती है । पर इस दुराव से मन में ऐसी गाँठें मजबूत होती जाती हैं जिनके कारण अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं । साथ ही उन दोषों के निराकरण का उपाय न होने से सड़े मबाद की तरह वे भीतर सड़ते रहते हैं और अंततः भयंकर अधःपतन के रूप में प्रकट होते हैं ।

इसलिए आंतरिक दुर्बलताओं को समझने, उनके दूरवर्ती परिणामों को देखने के साथ ही निराकरण, निवारण का उपाय जानने के लिए किसी उदार ज्ञानवान मार्गदर्शन की आवश्यकता पड़ती है । मानसिक चिकित्सक की तरह जो उदारतापूर्वक दुर्बलताओं को सुन सके और बिना घृणा-भर्त्सना किए उस विभीषिका से छुटकारा दिला सके, उनके सामने गुप्त से गुप्त और घृणित से घृणित मनःस्थिति को भी कहा जा सकता है । उनके द्वारा लोकापवाद फैलाये जाने की कोई आशंका नहीं होती वरन् गुत्थियों को सुलझाने में ही सहायता मिलती है । वस्तुतः गुरु ही ऐसा सच्चा मित्र है जिसके सामने बिना किसी दुराव के सब कुछ कहा जा सकता है और बदले में सुधार के लिए विवेक रूपी उपचार प्राप्त किया जा सकता है ।

संत कहहिं अस नीति प्रभु, श्रुति पुरान मुनि गाव ।
होइ न बिमल बिबेक उर, गुर सन किये दुराव ॥

गुरु का सामान्य अर्थ मार्गदर्शक और अध्यापक होता है । व्यक्तित्व को विकसित और कर्तृत्व को परिष्कृत करना 'विद्या' के अंतर्गत आता है । भौतिक जानकारियों का अभिवर्द्धन एवं विभिन्न प्रकार की कुलशताओं का विकास 'शिक्षा' का

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

क्षेत्र है । अपनी विद्या सम्पदा का लाभ शिष्य को देने वाले अध्यापक गुरु कहलाते हैं और स्कूल-कालेजों में पढ़ाने वाले शिक्षकों को अध्यापक कहते हैं । वे भी गुरु वर्ग में हैं । एक वर्ग आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिए और दूसरा भौतिक उन्नति के लिए शिष्य को अपनी सेवा प्रदान करता है । अस्तु वे दोनों ही सम्माननीय माने गए हैं ।

इन दिनों गुरुडम एक बपौती बन गया है । एक गुरु का चेला दूसरे गुरु के नहीं जा सकता, किसी गुरुनामधारी को भ्रष्ट एवं पतित होने पर भी नहीं छोड़ा जा सकता । पीढ़ी दर पीढ़ी लोग गुरु-चेला का वंश चलाते जाते हैं । यह ठेकेदारी सर्वथा अवांछनीय है । गुरु का सम्मान उसकी पात्रता के साथ जुड़ा है । एक व्यक्ति के कई गुरु भी हो सकते हैं और वह उन सबका समान रूप से स्नेह एवं मार्गदर्शन प्राप्त करता रह सकता है । किसी छात्र के कितने ही गुरु हो सकते हैं और किसी गुरु को कितने ही छात्र पढ़ाने में कोई हर्ज नहीं है । दत्तात्रेय के चौबीस गुरु थे । भगवान राम ने भी वसिष्ठ और विश्वामित्र से शिक्षाएँ प्राप्त की थीं । अनेक आवश्यक लाभों की पूर्ति के लिए अनेक गुरुजनों से उनकी विशेषताओं के अनुरूप सहायताएँ ली जा सकती हैं और उन्हें गुरु कहा जा सकता है ।

स्कूली अध्यापक साधारणतया कई होते हैं । कई विषयों को कई अध्यापकों द्वारा ही पढ़ा और पढ़ाया जाता है । यही बात आध्यात्मिक क्षेत्र में भी लागू होती है ।

इन दिनों गुरु परंपराएँ नष्ट प्राय: हो चली हैं । उनके स्थान पर गुरुडम का बोलवाला है । तथाकथित गुरु नामधारी प्राय: उन सभी विशेषताओं से शून्य होते हैं, जिनके लिए गुरु शब्द का प्रयोग किया गया है । कोई भी साधु बाबा या पंडा-पुजारी उन महान क्षमताओं से रहित होने पर भी भोले लोगों को चेला बनाने का धंधा पकड़ लेता है और गले में कंठी बाँध कर, कान फूँक कर उनका धन, सम्मान लूटता रहता है । साथ ही ऐसे परामर्श देता रहता है जिनसे आत्म कल्याण तो दूर उलटे भ्रम-जंजाल में उलझ कर भोले लोगों को मूढ़ अंधविश्वासों में जकड़ कर अपना अहित ही करना पड़ता है ।

अध्यापक वर्ग भी अपने शिक्षा क्षेत्र में मात्र पाठ्य पुस्तकें पढ़ा देना भर अपना कर्तव्य पूरा हो जाना समझ लेते हैं । वह भी ठीक तरह नहीं कर पाते । जबकि उन पर शिक्षण के साथ-साथ अपने गौरवशाली पद के अनुरूप व्यक्तित्व को निखारने की भी सहज जिम्मेदारी होती है । स्कूली शिक्षा के साथ-साथ अध्यापक अपने व्यक्तित्व, प्रभाव का उपयोग करके छात्रों में अनेक सद्‌गुणों का, प्रतिभाओं का विकास कर सकते हैं । किन्तु वह भी उनसे बन नहीं पड़ता है ।

क्या अध्यात्म और क्या भौतिक, दोनों ही क्षेत्रों में गुरुजन इन दिनों अपना कर्तव्य पूरा नहीं कर रहे हैं । वे शिष्य का धन और समय जितना नष्ट कराते हैं उसके अनुरूप बदले का लाभ नहीं देते, जबकि उनका अनुदान बहुत बढ़ा-चढ़ा होना चाहिए । ऐसे कर्तव्यच्युत धूर्त गुरुजनों की रामायण में बहुत भर्त्सना की गई है । साथ ही मूढ़मति मूर्ख शिष्यों को भी लताड़ा गया है । एक को अंधा और दूसरे को बहरा कहा गया है । जो शिष्य का शोक तो दूर नहीं करते किन्तु धन नष्ट कराते हैं, उन गुरुजनों को नरकगामी बताया गया है ।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

गुरु सिष अधिर अंध के लेखा । एक न सुनइ एक नहिं देखा ॥
हरइ सिष्य धन सोक न हरई । सो गुरु घोर नरक महँ परई ॥

आज आवश्यकता गुरुडम को समाप्त करने की है । उसके स्थान पर गुरु-तत्व का पुनर्निमाण किया जाना चाहिए और पात्रता के अनुरूप उनके वरण तथा सम्मान की मर्यादा रहनी चाहिए । अंतरात्मा में अवस्थित गुरु-तत्व को प्रखर होना चाहिए । अध्यापक-वर्ग को शिक्षा-कर्मचारी से आगे बढ़कर छात्रों के चरित्र निर्माण में योगदान देना चाहिए ।

रामायण में गुरु परंपरा इसी स्तर की है । उसी का पुनर्जीवन, पुनर्जागरण इस युग की महती आवश्यकता है ।

धार्मिकता प्रकरण

धार्मिकता अर्थात कर्तव्य परायणता

व्यक्ति निर्माण के तीन आधार माने गए हैं-(१) आस्तिकता-ईश्वर पर विश्वास, ईश्वर की निष्पक्ष, न्यायकारी, कर्मफल देने की सुदृढ़ नीति पर आस्था, (२) आध्यात्मिकता-आत्मबोध की, आत्मजागरण की अनुभूति । आत्मनिरीक्षण, आत्मसुधार, आत्मनिर्माण एवं आत्मविकास की उत्कृष्ट रीति को हृदयंगम करना, (३) धार्मिकता-अपने और समाज के प्रति अपने कर्तव्यों का निष्ठा और तत्परतापूर्वक पालन । इन तीन तत्वों की व्याख्या, विवेचना में ही सारा धर्म और अध्यात्म का सुविस्तृत ढाँचा खड़ा हुआ है । उपासनात्मक, दार्शनिक और विधि-निषेध के कर्मकांडों का सुविस्तृत ऊहापोह इसी आधारशिला पर अवस्थित है ।

रामायण में इन तीनों ही आधारों पर सुविस्तृत प्रकाश डाला और लोकोपयोगी प्रेरणाओं का प्रकाश रामकथा में घुला कर जन-मानस में उतारने का प्रयत्न किया गया है । रामावतार-उनका समस्त क्रिया-कलाप इन्हीं तीन प्रयोजनों को प्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत करने के लिए हुआ था ।

'मनुस्मृति' के अनुसार भगवान राम ने कभी धर्म की अवहेलना नहीं की थी । जाति का, जनपद का धर्म, श्रेणी धर्म, कुलधर्म और स्वधर्म सबका वे पालन करते थे ।

जाति जानपदान्धर्मान्श्रेणीधर्मांश्च धर्मावत् ।
समीक्ष्य कुलधर्मांश्च स्वधर्मं प्रतिसादयेत् ॥

मानस में भी यह तथ्य बार-बार उद्घाटित किया गया है । भगवान का अवतार ही धर्म-स्थापना के लिए कहा गया है-

जब जब होहि धर्म की हानी । बाढ़ैं असुर अधम अभिमानी ॥
तब तब प्रभु धर बिबिध सरीरा । हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ॥
असुर मारि थापहि सुरन्ह, राखहि निज श्रुति सेतु ।
जग बिस्तारहिं बिसद यश, राम जन्म कर हेतु ॥

'श्रुति सेतु' का अर्थ शाश्वत धर्म मर्यादा है तथा 'यश विस्तार' का अर्थ है इसी के लिए लोगों को प्रेरित और उत्साहित करना ।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

भगवान शिव भी काकभुशुंडि के पूर्व जन्म प्रसंग में अपने श्रुति मार्ग की रक्षा का उल्लेख करते हैं–

काकभुशुंडि मंदिर में भगवान का नाम जप रहे थे और पूजा विधान में निरत थे। इस अहंकार में ग्रसित होकर उन्होंने गुरु आगमन पर प्रणाम करने का अपना धर्म–कर्तव्य पालन नहीं किया। इस पर गुरु ने तो ध्यान नहीं दिया पर भगवान शिव अति क्रुद्ध हुए। उनकी दृष्टि में पूजा का नहीं कर्तव्य परायणता का महत्व है। वे धर्म मर्यादाओं का पालन कठोरतापूर्वक किए जाने की आशा अपने भक्त से करते हैं, उसमें प्रमाद करने पर क्रुद्ध होते हैं। काकभुशंडि की पूजा को महत्व न देते हुए भगवान शिव ने उसकी धृष्टता का बहुत बुरा माना और उसे भक्ति का अहंकार करने वाला मानकर कठोर शाप का दंड दिया। ऐसा करना धर्म–मर्यादा को, श्रुति के मार्ग को अक्षुण्ण बनाये रहने के लिए आवश्यक भी था।

एक बार हर मंदिर, जपत रहेउँ सिव नाम।
गुर आयउ अभिमान तें, उठि नहिं कीन्ह प्रनाम॥

सो दयाल नहिं कहेउ कछु, उर न रोष लवलेस।
अति अघ गुरु अपमानता, सहि नहिं सके महेस॥
मंदिर माझ भई नभवानी। रे हत भाग्य अग्य अभिमानी॥
जद्यपि तब गुर कें नहिं क्रोधा। अति कृपाल चित सम्यक बोधा॥
तदपि साप सठ दैहउँ तोही। नीति बिरोध सोहाइ न मोही॥
जौं नहिं दंड करौं खल तोरा। भ्रष्ट होइ श्रुति मारग मोरा॥

भगवान की पूजा–आरती, धूप–दीप–नैवेद्य, अक्षत–पुष्प आदि पदार्थों से भी की जाती है, पर वह तो प्रतीक मात्र है। सद्‌गुण के उपचारों से जो पूजा की जाती है वही सच्चा सत्परिणाम उपस्थित करती है। इस तथ्य का स्पष्टीकरण 'विनय–पत्रिका' के एक पद में सुंदर ढंग से मिलता है। उसका भाव है–

"जड़–चेतन सब जगत ईश्वर का रूप है वे सर्वव्यापी और नित्य हैं। उन्हें वासना की धूप, आत्मज्ञान का स्वयं प्रकाश दीप, श्रेष्ठ भाव का नैवेद्य, प्रेम का ताम्बूल इन्द्रिय रूपी बत्तियों को जलाकर भक्ति, वैराग्य, विज्ञान रूप आरती कर। भगवान की सेवा के लिए क्षमा, करुणा आदि दासी नियुक्त कर। जिसके हृदय में हरि रहते हैं वहाँ दुर्गुण नहीं रहते। तुलसी कहते हैं जो ऐसी आरती करता है वह दोषों से मुक्ति पा जाता है।" पद इस प्रकार है।

ऐसी आरती राम रघुबीर की करहि मन।
हरन दुख दुंद गोविंद आनंद घन।
अचर चर रूप हरि सरबगत सरबदा बसत इति
बासना धूप दीजै।
दीप निज बोधगत कोह मद मोह तम, प्रौढ़
अभिमान चित्त वृत्ति छीजै॥
भाव अतिसय विसद प्रवर नैवेद्य सुभ,
श्री रमण परम संतोष कारी।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

प्रेम-तांबूल गतशूल संशय सकल विपुल भव
वासना बीज हारी ॥
असुभ सुभ कर्म घृत पूर्ण दश वर्तिका, त्याग
पावक, सतोगुण प्रकाश ।
भक्ति बैराग्य विज्ञान दीपावली, अर्पिनी
नीराजन जग निवास ।
बिमल हृदि भवन कृत शांति पर्यंक सुभ सयन
विश्राम श्री राम राया ।
क्षमा करुणा प्रमुख तत्र परिचारिका, यत्र
हरि तत्र नहिं भेद माया ॥
एहि आरती निरत सनकादिक श्रुति, सेष, सिव,
देवरिषि अखिल मुनि तत्व दरसी ।
करै सोई तरै, परिहरै कामादि मल, वदति
इति अमल मति तुलसी ॥

ऐसी ही पूजा आरती धर्म-कर्म का मुख्य अंग मानी गई है अगले पद में ऐसी ही आरती को पुण्य बतलाते हुए कहा है-

हरति सब आरती आरती राम की ।
दहन दुखदोष निरमूलनी काम की ॥
सुरभ सौरभ धूप दीपवर मालिका ।
उड़त अघ विहँग सुनि ताल करतालिका ॥
भक्त हृदि भवन अज्ञान तम हारिनी ।
बिमल बिग्यान मय तेज बिस्तारिनी ॥
मोह मद कोह कलि कंज हिम जामिनी ।
मुक्ति की दूतिका, देह दुति दामिनी ॥
प्रनत जन कुमुद वन इंदु कर जालिका ।
तुलसि अभिमान महिषेस बहु कालिका ॥

आरती का मर्म न समझकर यदि हम केवल बत्ती जलाकर यह सब उपलब्धियाँ चाहें तो यह हमारा अविवेक ही कहा जायगा । ऐसा ही भाव 'विनय पत्रिका' के एक अन्य पद में है, जिसमें जप के बाद हवन, तर्पण आदि की इसी तरह की व्याख्या की गई है । उसमें कहा गया है-

"राम नाम का जप करो, जपने के बाद इस प्रकार हवन करो, प्रेज जल से तर्पण, स्नेह का घी, संयम की समिधाएँ, क्षमा की अग्नि और ममता की बलि देनी चाहिए । पापों का उच्चाटन, मन का वशीकरण, अहंकार और काम का मारण तथा संतोष और ज्ञान रूपी संपत्ति का आकर्षण करना चाहिए । जिनने इस प्रकार भजन किया उसे ही रघुनाथ जी मिले हैं ।

प्रेम बारि तरपन भलो, घृत सहज सनेहु ।
संयम समिधि, अगिनि छमा ममता बलि देहु ॥

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अघ उचाटि मन बस करै, मारै मद मार ।
आकरषै सुख संपदा संतोष विचार ॥

जिन यहि भाँति भजन कियो मिले रघुपति ताहि ।
तुलसीदास प्रभु पथ चढ्यो जौ लेहु निबाहि ॥

रामायण की धर्म-निष्ठा लंबे-चौड़े ब्रह्म-विवेचन पर, खर्चीले कर्मकांडों पर, प्रचलित प्रथा-परम्पराओं के अंधानुकरण पर, मूढ़ मान्यताओं के लिए दुराग्रही रहने पर टिकी हुई नहीं है । उसकी धर्मपरायणता विशुद्ध कर्तव्य परायणता है । धर्म का पर्यायवाची कर्म है । बोलचाल में भी धर्म और कर्म को मिला कर बोलते हैं, उन्हें एक दूसरे का पूरक मानते हैं । धर्म के दो पक्ष हैं-एक चिंतन और दूसरा व्यवहार । उत्कृष्ट विचारणा और आदर्श क्रिया-शीलता को मिलाकर समूची धर्म धारण बनती है । मन, वचन और कर्म तीनों में गौरव के अनुरूप उच्चस्तरीय तत्वों का समावेश हो तो समझना चाहिए कि धर्म का वास्तविक और व्यावहारिक रूप सामने आ गया ।

कर्तव्य निष्ठा की, धार्मिकता की गरिमा का प्रतिपादन रामायण में अनेक स्थानों पर किया गया है । भरत को कर्तव्य-पालन की प्रेरणा देते हुए राम कहते हैं कि जो करने योग्य है उसे तुम करो और वैसा ही मुझसे कराओ । इस प्रकार सूर्य वंश के पालक की भूमिका निबाही । कर्तव्य साधना ही सकल सिद्धियाँ देने वाली हैं । उसी से सुगति और कीर्ति मिलती है । ऐसा समझाते हुए स्वयं कष्ट सहकर भी परिवार और प्रजा को सुखी बनाने का प्रयत्न करो ।

सो तुम करहु कराबहु मोहू । तात तरनि कुल पालक होहू ॥
साधक एक सकल सिधि देनी । कीरति सुगति भूतिमय बैनी ॥
सो बिचारि सहि संकट भारी । करहु प्रजा परिवार सुखारी ॥

अपने पुत्रों की धर्म परायणता पर राजा दशरथ को भरोसा है । राम वन-मगन के दु:ख से व्याकुलता में भी उन्हें राम का स्वभाव स्मरण है । सुमंत्र को वे समझाते हैं कि दोनों भाइयों को वन दिखाकर लौटा लाना । किन्तु वे मानेंगे इसमें उन्हें संदेह है । अत: वे विकल्प भी बताते हैं ।

जौं हिंन फिरहिं धीर दोउ भाई । सत्य संघ दृढ़ ब्रत रघुराई ॥
तौ तुम्ह बिनय करेहु कर जोरी । फेरिअ प्रभु मिथिलेस किसोरी ॥

वन-गमन के समय श्रीराम सुमंत को समझाते हुए धर्मनिष्ठ कर्तव्य का बोध कराते हैं-

मंत्रिहि राम उठाइ प्रबोधा । तात धरम मत तुम सबु सोधा ॥
सिबि दधीचि हरिचंद नरेसा । सहे धरम हित कोटि कलेसा ॥
रंति देव बलि भूप सुजाना । धरमु धरेउ सहि संकट नाना ॥
धरमु न दूसर सत्य समाना । आगम निगम पुरान बखाना ॥
मैं सोइ धरमु सुलभ करि पावा । तजे तिहूँ पुर अपजसु छावा ॥

धर्मनिष्ठ मनुष्य को कामना न होने पर भी सुख-सम्पत्ति की सहज प्राप्ति होती है । जिस प्रकार समुद्र में बिना बुलाये ही नदियाँ उससे मिलने के लिए दौड़ती चली जाती हैं, उसी प्रकार धर्मशील व्यक्ति हर दृष्टि से समुन्नत बनता जाता है ।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

सुनि बोले गुरु अति सुख पाई । पुण्यपुरुष कहँ महि सुख छाई ।।
जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं । जद्यपि ताहि कामना नाहीं ।।
तिमि सुख संपति बिनहिं बुलाए । धर्मसील पै जाहि सुभाए ।।

स्वभाव का प्रभाव पड़ता ही है । ऐसा नहीं हो सकता कि आग के पास बर्फ ले जाया जाय और वह पिघले नहीं । यही बात 'शिव' के पास 'काम' के जाने पर हुई । जहाँ उच्च आदर्शवादिता मन में भरी होगी वहाँ वासनात्मक कुविचार सहज ही नष्ट हो जाते हैं । जिसके स्वभाव में ही धर्माचरण आ गया है उसके पास दोष आदि नहीं आते । उमा-सप्तऋषि संवाद में कहा गया है-

तात अनल कर सहज सुभाऊ । हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ ।।
गए समीप सो अवसि नसाई । जिमि मनमथ महेस की नाई ।।

श्रेष्ठ आचरण ही धर्माचरण है । यही मनुष्य का उत्थान करते हैं । कुकर्म ही अधर्म हैं, पाप हैं । यह मनुष्य का पतन करते हैं । पाप छोटे-छोटे हों तब भी उनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए । स्वभाव में सम्मिलित होकर वे सुदृढ़ हो जाते हैं और फिर बढ़ते-बढ़ते सर्वभक्षी बन जाते हैं । पाप की शत्रु, रोग, अग्नि, सर्प से तुलना करते हुए शूर्पणखा विलाप करते हुए रावण से कहती है-

रिपु रुज पावक पाप प्रभु, अहि गनिअ न छोट करि ।
अस कहि बिबिध बिलाप, करि लागी रोदन करना ।।

समझदार व्यक्ति इस सिद्धांत को समझते हैं । जब श्रीराम की सेना के समुद्र किनारे पहुँचने की सूचना मिली तो रावण के दरवार के खुशामदी सभासद कहने लगे कि चिंता मत करो, बंदरों को हम यों ही खा जायेंगे । किन्तु विभीषण ने रावण को अपनी भूल सुधारकर पापों की शृंखला वहीं समाप्त करने की सलाह दी और कहा कि कल्याण चाहने वाले को दुष्कर्म त्याग कर सन्मार्ग पर चलना चाहिए । सद्भाव अपनाना ही बड़ी नीति है ।

जो आपन चाहै कल्याना । सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना ।।
सो पर नारि लिलार गोसाईं । तजउ चउथि के चंद कि नाईं ।।
चौदह भुवन एक पति होई । भूत द्रोह तिष्ठइ नहिं सोई ।।
गुन सागर नागर नर जोऊ । अलप लोभ भल कहइ न कोऊ ।।
काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक के पंथ ।
सब परिहरि रघुबीरहि, भजहु भजहिं जे संत ।।

धर्म मर्यादा की अवज्ञा-उपेक्षा करके अनीति-पाप करते रहना अपने लिए काल को आमंत्रित करना है । मंदोदरी रावण को यही समझाती है कि धर्मबुद्धि तथा विचार शक्ति का क्षय ही काल का प्रत्यक्ष कोप है, वह किसी पर डंडा नहीं चलाता ।

काल दंड गहि काहु न मारा । हरइ धरम बल बुद्धि बिचारा ।।

और बल, बुद्धि, तेज का क्षय कब होता है, इस मर्म को तुलसीदास जी रावण द्वारा सीताहरण के प्रसंग में उभारते हैं । वे समझाते हैं कि जब मनुष्य कुमार्ग पर पैर रखता है तो उसका तेज, बल, बुद्धि आदि सभी विशेषताएँ नष्ट हो जाती हैं । प्रतापी

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

रावण ने जब सीता को चुराने के लिए कदम बढ़ाया तो उसे चोर की तरह लुक-छिपकर डरते हुए वह कार्य करना पड़ा ।

जाके डर सुर असुर डेराहीं । निसि न नींद दिन अन्न न खाहीं ॥
सो दस सीस स्वान की नाई । इत उत चितइ चला भड़िहाई ॥
इमि कुपंथ पग देत खगेसा । रह न तेज तन बल बुधि लेसा ॥

जो यह मर्म नहीं समझते वे हर स्थिति में दु:खी रहते हैं और भगवान को दोष देते हैं । 'विनय पत्रिका' में कहा है-

"ऐसी लोक रीति देखी-सुनी गई है कि व्याकुल नर-नारी अतिवृष्टि एवं अनावृष्टि दोनों में देव को गालियाँ देते हैं । जब ईश्वर भी निंदा से नहीं बच सकता तो हमें निंदा पर ध्यान न देकर कर्तव्य पालन करना चाहिए ।"

लोक रीति देखी सुनी, व्याकुल नर नारी ।
अति बरषे अन बरषेहुँ, देहिं देवहिं गारी ॥

धर्मशील व्यक्ति न तो स्वकर्तव्य से स्वयं डिगता है, न दूसरे को डिगने देता है । दशरथ जी अपना वचन पलटने को सोचते हैं और रामचंद्र जी को अयोध्या में रोकने का प्रयत्न करते हैं पर राम औचित्य को प्रधानता देते हैं और पिता की मोहग्रस्तता को उपेक्षणीय मानते हैं । उनकी इच्छा पूरी करने की अपेक्षा वनवास जाने के निर्णय में मर्यादा का पालन देखते हैं । अस्तु वे पिता की इच्छा को अस्वीकार करके वन जाने की बात पर ही दृढ़ रहते हैं । उस समय मानस कथाकार कहते हैं-

रायँ राम राखन हित लागी । बहुत उपाय किये छल त्यागी ॥
लखी राम रुख रहत न जाने । धरम धुरंधर धीर सयाने ॥

मन को संतुलित रखने वाले कठिन प्रसंग आने पर भी अविचल रह सकते हैं और धैर्यपूर्वक शांत चित्त से अपना कठिन कर्तव्य भी पालन करते रह सकते हैं । श्रीराम जंगल के लिए स्वाभाविक ढंग से ही चल पड़ते हैं ।

पितु आयसु भूषन बसन, तात तजे रघुबीर ।
बिस्मय हरष न हृदय कछु, पहिरे बल्कल चीर ॥

एक दिन पूर्व श्री राघवेन्द्र को युवराज पद देने की घोषणा की गई थी और दूसरे ही दिन वन जाने का आदेश मिल गया । वे यदि सब कुछ छोड़कर मुस्कराते हुए चले जाते हैं तो इसका कारण यही है कि वे ऐश्वर्य को बड़प्पन का चिह्न नहीं मानते थे । धर्म का मर्म समझने के कारण उन्हें कर्तव्य पालन में ही सुख की अनुभूति होती थी, ऐश्वर्य प्राप्ति में नहीं । इसका वर्णन करते हुए तुलसीदास जी 'कवितावली' में लिखते हैं-

कीर के कागर ज्यों नृप चीर, विभूषन उप्पम अंगनि पाई ।
औध तजी मग बास के रूख ज्यों, पंथ के साथ ज्यों लोग लुगाई ॥
संग सुबंधु पुनीत प्रिया, मनो धर्मक्रिया धरि देह सुहाई ।
राजिब लोचन राम चले, तजि बाप को राज बटाऊ की नाई ॥

भरत अपने नियम के बड़े पक्के थे उनका भोजन वस्त्र, बर्तन, व्रत-नियम सब कठिन ऋषि-धर्म के अनुकूल थे । धर्म प्रेमी को अपना आहार-विहार, व्यवहार सभी कुछ आदर्श बनाना पड़ता है, भले ही वह कष्टकारक प्रतीत क्यों न हो ।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

असन बसन बासन ब्रत नेमा । करत कठिन रिषि धरम सप्रेमा ॥

जप, तप, जोग आदि की प्रक्रिया सद्‌विकारों, शुभकर्मों और प्रभु समर्पण की प्रखरता के रूप में हों तभी जानना चाहिए कि साधना सफल हुई । ज्ञान, कर्म और भक्ति का त्रिविध समन्वय ही अध्यात्म की त्रिवेणी तीर्थ है ।

जप तप नियम जोग निज धर्मा । श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा ॥
ज्ञान दया दम तीरथ मज्जन । जहँ लगि धर्म कहिय श्रुति सज्जन ॥
आगम निगम पुरान अनेका । पढ़े सुने कर फल प्रभु एका ॥
तब पद पंकज प्रीति निरंतर । सब साधन कर यह फल सुंदर ॥

राम-राज्य में सभी नागरिक धर्म का पालन करते हैं और रोग, शोक, भय आदि आधि-व्याधियों से मुक्त रहते हैं-

बरनाश्रम निज निज धरम, निरत बेद पथ लोग ।
चलहि सदा पावहि सुखहिं, नहिं भय शोक न रोग ॥

जो धर्म-कर्तव्यों में निरत हैं रामायण की दृष्टि में वे ही धन्य हैं ।

धन्य देश सो जहँ सुरसरी । धन्य नारि पतिव्रत अनुसरी ॥
धन्य सो भूप नीति जो करई । धन्य सो द्विज निज धर्म न टरई ॥
सो धन धन्य प्रथम गति जाकी । धन्य पुण्य रत मति सोई पाकी ॥
धन्य घरी सोइ जप सतसंगा । धन्य जन्य द्विज भगति अभंगा ॥

परोपकार उदार हृदय की प्रतिकृति

मानव शरीर के साथ जुड़ी हुई विशेष सुविधाएँ विभूतियाँ एवं संपदाएँ ईश्वर की अमानत हैं, जो उसके विश्व-उद्यान को सुविकसित बनाने के लिए मिली हैं । अन्य प्राणियों से अधिक शरीर निर्वाह के अतिरिक्त जो कुछ उसे मिला है वह विशुद्ध रूप से परमार्थ प्रयोजनों के लिए है ।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है । उसकी प्रगति एवं सुविधाओं का प्रधान आधार समाज द्वारा मिला सहयोग है । अन्न, वस्त्र, शिक्षा, शासन, सुख-साधन, वाहन, आजीविका, चिकित्सा, पत्नी आदि प्राय: सभी सुविधाएँ एवं योग्यताएँ उसे समाज द्वारा मिली हैं । एकाकी मनुष्य तो भेड़िये की माँद में मिले अविकसित रामू बालक की तरह निरीह ही हो सकता है । जिस समाज से इतने अधिक अनुदान मिले उसका ऋण चुकाना मानवीय कर्तव्य है ।

भारतीय संस्कृति के जननी-जनक गायत्री और यज्ञ मने गए हैं । दोनों का युग्म अविच्छिन्न है । सद्‌बुद्धि रूपी गायत्री का प्रकाश जहाँ भी होगा वहाँ पवित्र जीवन एवं लोकमंगल के लिए बढ़-चढ़ कर त्याग-बलिदान की प्रेरणा देने वाला यज्ञ भी जुड़ा रहेगा । जबकि बादल, नदियाँ, वृक्ष, पशु आदि सभी निरंतर देते ही रहते हैं तो मनुष्य में परोपकार वृत्ति की कृपणता क्यों होनी चाहिए ? शरीर के अवयव एक दूसरे को अपना श्रम एवं अनुदान प्रदान करते हैं तभी जीवन चलता है । समाज रूपी शरीर को ठीक तरह चलाने के लिए मनुष्यों में परस्पर स्नेह, सहयोग, उदारता एवं परोपकार की भावनाएँ उद्दीप्त रहनी चाहिए ।

परहित परायण रहकर सेवा-मार्ग अपनाने को रामायण सर्वश्रेष्ठ धर्म मानती है

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

और दूसरों का अहित करने को सबसे बड़ा पाप, सबसे बड़ी नीचता कहती है ।

परहित सरिस धर्म नहिं भाई । पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ॥

परोपकार में अपना जीवनदान देने वाले की सदा-सर्वदा सत्पुरुष प्रशंसा करते रहते हैं ।

परहित लागि तजइँ जो देही । संतत संत प्रसंसहिं तेही ॥

जटायू परहित के लिए अपनी जान की बाजी लगा देता है । तब भगवान राम उसको परम धार्मिकों से भी श्रेष्ठ गति देते हुए कहते हैं-

परहित बस जिन्हके मन माहीं । तिन्ह तहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥

परमार्थ को प्रेरणा देते हुए मानसकार ने प्रतापभानु की कथा के अंतर्गत जड़ पदार्थों में भी परमार्थ वृत्ति के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं-

संत बिटप सरिता गिरि धरनी । परहित हेतु सबन्ह कै करनी ॥

काकभुशुंडि जी संतों का स्वभाव भी प्रकृति की तरह परमार्थ-परायण बतलाते हैं-

पर उपकार बचन मन काया । संत सहज सुभाउ खगराया ॥
संत सहहिं दुख पर हित लागी । पर दुख हेतु असंत अभागी ॥

धर्म-चिंतन का प्रकटीकरण सत्कर्मों के रूप में सामने आता है । धर्मात्मा और कार्यनिष्ठ एक ही स्तर के दो नाम हैं । मानवी गरिमा से अनुरूप मनुष्य का व्यक्तित्व, चरित्र एवं कर्तृत्व होना चाहिए । रामायण में व्यक्तिगत और सामाजिक कर्तव्यों का पालन करने वालों को ही धर्म परायण माना गया है और धर्म को सद्भावनाओं एवं सत्प्रवृत्तियों की प्रेरणा के रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

देव काज सँवारने के लिए राम कमर कस कर उठे और उस प्रयोजन में बहुत ही प्रसन्नता एवं उत्साह के साथ लग गए ।

तब रघुपति जानत सब कारन । उठे हरषि सुर काज सँवारन ॥

वंदना प्रकरण में यह मत व्यक्त किया गया है कि कीर्ति, विद्या, ऐश्वर्य आदि संपत्तियों की सार्थकता एवं प्रशंसा तभी है जब वे गंगा के समान सर्वजनीन हित साधना में प्रयुक्त हो सकें ।

कीरति भनिति भूति भलि सोई । सुरसरि सम सब कहँ हित होई ॥

मानस के पात्र धर्म कर्तव्यों के निर्वाह के लिए बड़े से बड़ा त्याग करने को प्रस्तुत रहते हैं । विश्वामित्र जी दशरथ से उनके पुत्रों को माँगने आये ताकि उन्हें असुरता से लड़ाया जा सके । वे कहते हैं-राजन ! मोह और अज्ञानजन्य उदासी छोड़कर पुत्रों को परमार्थ के लिए प्रदान करो । इससे तुमको धर्म सेवा का यश मिलेगा और इन बालकों का कल्याण होगा ।

असुर समूह सतावहिं मोही । मैं जाचन आयउँ नृप तोही ॥
अनुज समेत देहु रघुनाथा । निसिचर बध मैं होब सनाथा ॥
देहु भूप मन हरषित, तजहु मोह अग्यान ।
धर्म सुजस प्रभु तुम्ह कहँ, इन्ह कहँ अति कल्यान ॥

प्रसन्नता के अवसरों पर सामर्थ्य के अनुसार दान देने की परम्परा है । राम जन्म

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

के अवसर पर अयोध्यावासियों में दान का इतना उत्साह था कि अपने पास जो कुछ था वह सब दे डाला । किन्तु लेने वालों का स्तर देखिए । उनने भी अपने पास कुछ नहीं रखा, वरन् जो पाया वह दूसरों को दे डाला ।

सर्वस दान कीन्ह सब काहू । जेहि पावा राखा नहिं ताहू ॥

इस दान की प्रक्रिया को सर्वत्र सराहा गया पर उसमें औचित्य का पूर्ण ध्यान रखा गया । जो लेने का अधिकारी था उसे वह ही दिया जो उचित है । कुपात्रों को अहितकर दान तो सर्वदा अहितकर परिणाम ही उत्पन्न करता है ।

देखि कृपा कर सकल सराहें । दिये उचित जिन जिन तेइ चाहें ॥

जो माँगते नहीं, जो संग्रह नहीं करते, जो गिड़गिड़ाते, पूँछ हिलाते नहीं, ऐसे स्वाभिमानी सत्कर्म परायण परमार्थियों को बादल जैसे उदार हृदय लोग ही बिना माँफी सहायता देते हैं । सुपात्र को अपनी ओर से देने की महत्ता है । 'दोहावली' में इस संदर्भ की उक्ति है ।

नहिं जाचत नहिं संग्रहै, सीस नाइ नहिं लेइ ।
ऐसे मानी चातकहि, को वारिद बिनु देइ ॥

तुलसीदास जी परमार्थ को सद्‌गति के लिए अनिवार्य बतलाते हुए 'विनय पत्रिका' में कहते हैं–

'जानत हूँ मन बचन कर्म परहित कीन्हे तरिये ।'

"मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि मन, वाणी और कर्म से परोपकार करने से ही तर सकता हूँ, मुक्ति पा सकता हूँ ।"

वाणी का शील और संतुलन

वाणी की धारा मन:स्थिति की दिशा में प्रवाहित होती है । शराब पीकर, लहसुन खाकर आने वाले के पेट में जो कुछ भरा है उसी के अनुरूप गंध मुँह से आती है । इसी प्रकार मनोदशा के अनुरूप वचन बोले जाते हैं । ओछे, अहंकारी मनुष्य सदा आत्मप्रशंसा के गीत गाते हैं और दूसरों की निंदा करके अपना बड़प्पन सिद्ध करने की विडंबना में लगे रहते हैं । दुष्ट-दुराचारियों के मुख से वैसी ही चर्चा सुनी जा सकती हैं, जिससे अनाचार उत्पन्न होता हो । संत सज्जन सदा हृदय को शांति देने वाले प्रेम, नम्रता और शालीनता भरे वचन बोलते हैं । जिस प्रकार मन की स्थिति के अनुरूप मुख से वचन निकलते हैं उसी प्रकार वाणी को परिष्कृत बनाने का अभ्यास करते हुए मानसिक स्थिति को उच्चस्तरीय बनाने का अभ्यास किया जा सकता है ।

किसी की अंत:स्थिति का पता उसके मुख से निकलने वाली वचन-चर्चा से सहज ही लगाया जा सकता है । दूसरों पर अपने व्यक्तित्व की जैसी छाप छोड़नी हो, उसी के अनुरूप वाणी को अभ्यस्त करना चाहिए । यदि सज्जन के रूप में अपने को प्रस्तुत करना है तो वाणी में नम्रता, मधुरता, गंभीरता, शालीनता एवं दूरदर्शिता का समुचित समावेश रहना ही चाहिए ।

वाणी उत्तरदायित्वों से भरी होनी चाहिए । जो किया जा सकता है वही करना चाहिए । जो आश्वासन दिया गया है उसे पूरा करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए । वचनभंग का लांछन अपने ऊपर नहीं लगने देना चाहिए ।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्रान जाहिं पर बचन न जाई ॥

श्रीराम का वाणी के अद्‌भुत संतुलन का प्रमाण निवास के प्रसंग में मिलता है । वे कितने धैर्यशील हैं कि इतनी बड़ी विपत्ति को हँसते हुए काट रहे हैं । यही नहीं शोक विह्वल पिता को सांत्वना देते हुए आसन्न संकट को प्रसन्नता की बात, मंगल समय कहते हुए टाल देने वाले मनस्वी के समान वचन कहते हैं—

अति लघुबात लागि दुखु पावा । काहुँ न मोहि कहि प्रथम जनावा ॥
देखि गोसाँइहिं पूँछिउँ माता । सुनि प्रसंग भए सीतल गाता ॥

कैकेयी की कठोरता और दुष्टता को जानते हुए श्रीराम अपना संतुलन और सौजन्य नहीं खोते । सहज मुस्कान बनाये रहते हैं और शांत चित्त से गुत्थी सुलझाते हैं ।

मन मुसुकाइ भानुकुल भानू । राम सहज आनंद निधानू ॥

परशुरामजी के क्रोधित होने पर श्रीराम अपने शीलयुक्त विनम्र वचनों से उन्हें शांत कर देते हैं । भगवान राम का शील, व्यावहारिकता और दृढ़ता देखते ही बनती है । नम्रता से कठोरता को पिघलाना राम की प्रधान नीति थी ।

अति बिनीत मृदु सीतल बानी । बोले राम जोरि जुग पानी ॥
सुनहु नाथ तुम सहज सुजाना । बालक बचन करिअ नहिं काना ॥
बररै बालक एक सुभाऊ । इन्हहिं न संत बिदूषहिं काऊ ॥
तेहि नाहीं कछु काज बिगारा । अपराधी मैं नाथ तुम्हारा ॥
कृपा कोपि बधु बँधव गोसाईं । मो पर करिअ दास की नाईं ॥

रुखाई के व्यवहार और प्रेम भरी दृष्टि से देखने में कितना अंतर होता है, इसे उस समय देखा गया जब राम की प्यार भरी दृष्टि से वानरों की युद्ध जनित सारी थकान दूर हो गई ।

भये बिगत श्रम बानर सबही । राम कृपा करि चितवा जबही ॥

वनवास का शोक उद्वेग भरा कठिन प्रसंग सामने होने पर भी राम अपना धैर्य, संतुलन नहीं खोते । उत्तेजित आवेशग्रस्त नहीं होते । वरन् मधुरता, मृदुलता को स्थिर रखते हुए माता से निवेदन करते हैं—

धरम धुरीन धरम मति जानी । कहेउ मातु सन अति मृदु बानी ॥

भरत का हठ राम के शील के सामने झुक गया । वे अपने मुँह से राम के सत्य पालन का समर्थन करके वन में रहने के औचित्य को स्वीकार करते हैं । हठ को छोड़कर औचित्य को ही अपनाना चाहिए, उसका समर्थन करना चाहिए ।

राखा मोर दुलार गोसाईं । अपने सील सुभायँ भलाईं ॥
नाथ कपट मैं कीन्ह ढिठाई । स्वामि समाज सकोच बिहाई ॥

नीति का विरोध कभी नहीं किया जाना चाहिए । हितकर और कठोर वाणी बोलने वाले और सुनने वाले बहुत कम लोग हैं । मीठा बोलना उचित तो है, पर सत्य और हित मिश्रित बात यदि कठोर लगती हो तो भी उसकी उपयोगिता है । इसके विपरीत मधुरता के लिए चापलूसी करना निरर्थक है ।

नीति विरोध न करि प्रभु, मंत्रिन्ह मति अति थोर ।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

कहहिं सचिव सब ठकुर सुहाती । नाथ न पूर आव एहि भाँती ॥
प्रिय बानी जे सुनहि जे कहहीं । ऐसे नर निकाय जग अहहीं ॥
बचन परम हित सुनत कठोरे । सुनहिं जे कहहिं ते नर प्रभु थोरे ॥

ठकुर सुहाती करना, चापलूसी करना, सामने वाले का रुख देखकर उसकी हाँ में हाँ मिलाना स्वार्थ सिद्धि करने वाले चाटुकारों का पेशा हो सकता है पर जिम्मेदार लोगों को तो निर्भयतापूर्वक यथार्थ अभिमत ही व्यक्त करना चाहिए । यदि बड़े और जिम्मेदार लोग सत्परामर्श न देकर हवा का रुख देख कर बोलने लगें तो फिर सर्वनाश ही प्रस्तुत होगा ।

सचिव वैद गुरु तीनि जो, प्रिय बोलहिं भय आस ।
राज धरम तन तीनि कर, होइ बेगहीं नास ॥

मनुष्य का व्यवहार, वचन और विचार सत्यनिष्ठा पर आधारित होना चाहिए । छल, कपट एवं मिथ्या भाषण से बचने का प्रयत्न करना चाहिए । सत्य और प्रिय वचन बोलने वालों के अंत:करण भगवान के निवास के योग्य हैं, यह वाल्मीकि जी का अभिमत है-

कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी । जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥

चित्रकूट में भगवान राम ने सत्य को सर्वश्रेष्ठ धर्म बताया है-

धरमु न दूसर सत्य समाना । आगम निगम पुरान बखाना ॥

कैकेयी को समझाते हुए राजा दशरथ जी ने असत्य को सभी पापों से अधिक तथा सत्य को सभी सत्कर्मों का मूल बताया है-

नहिं असत्य सम पातक पुंजा । गिरि सम होहि कि कोटिक गुंजा ॥
सत्यमूल सब सुकृत सुहाए । बेद पुरान बिदित मनु गाए ॥

श्रीराम की वाणी का प्रभाव उनके परिजनों पर हर जगह अद्‌भुत पड़ा, किन्तु रावण के उपदेश निरर्थक हो गए । दूसरों को शिक्षा देने वाले और स्वयं अज्ञान में भटकने वालों की कमी नहीं । रावण-मेघनाद की मृत्यु पर रानियों को तो ब्रह्मज्ञान सिखाता है, पर स्वयं उसी माया-मोह में चोटी तक फँसा हुआ है । ऐसे परउपदेश कुशल लोगों की संसार में कमी नहीं ।

तब दसकंध बिबिध बिधि, समुझाईं सब नारि ।
नस्वर रूप जगत यह, देखहु हृदय बिचारि ॥

वाणी में मनुष्य के आचरण से ओज आता है । उपदेश करने वाले तो बहुत दूर हैं, पर आदर्श को काम में लाने वाले थोड़े ही लोग होते हैं । इन आचरणकर्त्ताओं को ही ज्ञान का सत्परिणाम मिलता है और वे ही दूसरों पर अपना प्रभाव डाल सकते हैं । जो उपदेश दूसरों को देना है और उनसे पालन कराना है, उसे कार्य रूप में करके भी दिखाना चाहिए । अपना आचरण उन उपदेशों के अनुकूल ढालना चाहिए ।

वाणी के संतुलन का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि जिस कथन से विग्रह उत्पन्न हो उसे सत्य होते हुए भी नहीं कहना चाहिए । बहुत से प्रसंग ऐसे हैं जिन्हें गुप्त रखना ही लोकहित की दृष्टि से आवश्यक है । उन्हें प्रकट करने में सत्य का मूल उद्देश्य पूरा नहीं होता, वरन् उस तथाकथित सत्य भाषण से असत्य आचरण जैसी

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

स्थिति बन जाती है । अस्तु, ऐसे अवसरों पर गोपनीयता ही उचित है ।

भगवान राम सुमंत्र से लक्ष्मण द्वारा दशरथ, कैकेयी, भरत आदि के लिए कहे गए कटु वचनों को अयोध्या जाकर न कहने का निर्देश करते हैं और उसके लिए कसम तक खिलाते हैं–

लखनु कहे कछु बचन कठोरा । बरजि राम पुनि मोहि निहोरा ॥
बार बार निज सपथ दिवाई । कहबि न तात लखन लरिकाई ॥

बोलने में केवल शब्दों का महत्व नहीं है, उसमें भी प्रधान है भाव । उन्हीं शब्दों का प्रयोग भिन्न-भिन्न भावों में किया जाता है । स्वयं अभिमान से दूर रहने के लिए अपनी सफलता का श्रेय दूसरों को देना अच्छी बात है । भगवान इससे प्रसन्न होते हैं । हनुमान जी लंका जलाकर लौटते हैं । प्रभु प्रसन्नता व्यक्त करके उनकी सराहना करते हैं, तो वे कहते हैं–

सो सब तव प्रताप रघुराई । नाथ न कछु मोर प्रभुताई ॥

उनकी इस निरभिमानिता से प्रसन्न होकर उन्हें दुर्लभ भक्ति का वरदान देते हैं ।

इसी प्रकार अंगद जब रावण की सभा में खलबली मचाकर लौटते हैं तो वे भी अपनी विनम्रता ही दिखाते हैं ।

रिपुबल धरषि हरषि कपि, बाल तनय बलपुंज ।
पुलक शरीर नयन जल, गहे राम पद कंज ॥

तब भी भगवान उन पर प्रसन्न होकर उनका आदर करते हैं, क्योंकि हनुमान जी और अंगद के वास्तविक भाव वही थे । किन्तु काम-विजय के प्रसंग में नारद के साथ भगवान का व्यवहार भिन्न प्रकार का था । भगवान काम-विजय पर उनकी प्रशंसा करते हैं तो वे उत्तर देते हैं–

नारद कहेउ सहित अभिमाना । कृपा तुम्हार सकल भगवाना ॥

कहे तो नारद ने भी वही शब्द हैं जो हनुमान जी ने कहे थे, किन्तु नारद के भाव के अनुरूप नहीं थे, भिन्न थे । इसलिए उन्हें वरदान न देकर भगवान ने उल्टे चक्कर में डाल दिया । स्पष्ट है कि वाणी के शब्दों से नहीं भावना से किसी को समर्थक बनाया जा सकता है ।

स्वयं भगवान राम भी वाणी के सच्चे साधक हैं । वे अपनी लंकाविजय, राक्षसों के नाश का श्रेय बंदरों तथा गुरु वशिष्ट को देते हैं । युद्ध समाप्त होने पर वे बंदरों से कहते हैं–

तुम्हरे बल मैं रावण मार्‍यो । तिलक विभीषण कहँ पुनि सार्‍यो ॥

और अयोध्या पहुँचने पर गुरु वशिष्टजी का परिचय देते हुए सखाओं से कहते हैं–

गुरु बसिष्ट कुल पूज्य हमारे । इनकी कृपा दनुज रन मारे ॥

दोनों ही प्रसंगों में श्रीराम का भाव सच्ची कृतज्ञता तथा आदर प्रकट करने का था, इसीलिए उनकी वाणी से सभी प्रभावित हुए ।

वस्तुतः महत्व बाह्य रूप और क्रिया का कम है और उसके पीछे की भावना तथा दिशा का अधिक है । वंदना प्रसंग में ही तुलसीदास जी ने इस तथ्य को बड़ी सुंदरता से स्पष्ट किया है–

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

"महीने के दोनों पक्षों में प्रकाश और अंधकार की मात्रा बराबर ही रहती है किन्तु उनमें से एक को कृष्ण (अँधेरा) पक्ष कहते हैं और दूसरे को शुक्ल (उजेला) पक्ष कहते हैं । यह इसलिए कि एक पक्ष प्रकाश के स्रोत चंद्रमा का क्षय करता जाता है और दूसरा चंद्रमा को बढ़ाता जाता है । विनाश और विकास परक क्रियाकलाप ही मनुष्य की प्रशंसा और निंदा का कारण होता है ।"

सम प्रकास तम पाख दुहुँ, नाम भेद बिधि कीन्ह ।
ससि सोषक पोषक समुझि, जग जसु अपजसु दीन्ह ॥

जहाँ सुंदर वाणी प्राणदायिनी कही गई है, वहीं पर कड़ुए, कठोर एवं दुष्ट दुर्बुद्धि से भरे वचनों को वाण, वज्र, विष से भी अधिक अनर्थकारी कहा गया है । राजा दशरथ के प्राण कैकेयी द्वारा फेंके गए वाक्य वाणों से ही गए । मंथरा द्वारा प्रेरित कैकेयी ने कठोर शब्दों का आश्रय लेकर उनके प्राण लिए ।

निधरक बैठि कहइ कटुबानी । सुनत कठिनता अति अकुलानी ॥
जीभ कमान बचन सर बाना । मनहुँ महिप मृदु लच्छ समाना ॥

श्रीलक्ष्मण जी ने परशुराम जी से विनोदपूर्वक कहा आपके तो वचन ही करोड़ों वज्रों के समान घातक हैं । आप व्यर्थ ही परशु और धनुष का बोझ ले रहे हैं-

कोटि कुलिसि सम वचन तुम्हारा । व्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा ॥

शौर्य, साहस, पराक्रम एवं पुरुषार्थ

व्यक्तित्व को विकसित करने वाले सद्गुणों में शौर्य, साहस, पराक्रम एवं पुरुषार्थ का भी महत्वपूर्ण स्थान है । मात्र नम्रता, निरभिमानिता, सज्जनता ही पर्याप्त नहीं, वरन् मनुष्य को स्वाभिमानी, स्वावलंबी, श्रमशील एवं अनीति से लड़ने के लिए शूरवीर भी होना चाहिए । शरीरबल-बुद्धिबल और धनबल से भी अधिक महत्व की वस्तु है । मनोबल और आत्मबल की तरह इसे संपादित किया जाना चाहिए । मनस्वी, तेजस्वी, ओजस्वी बनना और व्यक्तित्व को प्रखर बनाने वाले कर्तव्य भी तत्परतापूर्वक अपनाये जाने चाहिए । इसी अभ्यास को तप कहा गया है ।

संसार में विपत्तियाँ सभी पर आती हैं । जिन्हें कष्ट सहन का अभ्यास होता है वे कठिन कर्तव्यों के आ पड़ने पर अविचलित रहकर श्रेष्ठ मार्ग पर आगे बढ़ जाते हैं । देखने वाले उनकी कठिनाई देखकर भले ही सिहर उठें परंतु तप के अभ्यास के कारण वे उन्हें सहज भाव से पार कर जाते हैं । राम वनगमन के प्रसंग में जब सीताजी सहित दोनों भाई कुश बिछाकर सोते हैं, तो उन्हें देखकर निषाद कहता है-

पिता जनक जग बिदित प्रभाऊ । ससुर सुरेस सखा रघुराऊ ॥
रामचंद्र पति सो बैदेही । सोबत महि बिधि बाम न केही ॥
ते सिय रामु साथरी सोए । श्रमित बसन बिनु जाहिं न जोए ॥

असंभव लगने वाले प्रसंग आने पर सामान्य व्यक्ति निराश होकर बैठ जाते हैं, किन्तु संकल्प के धनी उसके अनुरूप शक्तियाँ जाग्रत करने में लग जाते हैं । महान कार्य इसी ढंग से होते हैं । नारदजी ने तप की महत्ता बतलाते हुए पार्वतीजी तथा हिमांचल से कहा-

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

मातु पितहि पुनि यह मत भावा । तपु सुखप्रद दुख दोषु नसावा ॥
तप बल रचइ प्रपंच बिधाता । तप बल बिष्नु सकल जग त्राता ॥
तप बल संभु करहिं संघारा । तप बल सेषु धरइ महि भारा ॥
तप अधार सब सृष्टि भवानी । करहि जाइ तप अस जिय जानी ॥
जो तप करइ कुमारि तुम्हारी । भाविहुँ मेटि सकहि त्रिपुरारी ॥

धर्मनिष्ठ सदैव मृदु ही बना रहे यह आवश्यक नहीं । दुष्टता से निपटने के लिए जो रोष उत्पन्न होता है उसे मन्यु कहते हैं और स्वार्थ की हानि या अहंकार में क्षति पड़ने पर जो उत्तेजना उत्पन्न होती है उसे क्रोध कहते हैं । क्रोध की निंदा और मन्यु की उपयोगिता-आवश्यकता है । सदुद्देश्य में अडंगा अटकाने वाले कुटिल कठोर हृदय समुद्र को प्रबोध करने के लिए लक्ष्मण द्वारा उससे कड़ाई के साथ निपटने का आग्रह करने पर श्रीराम उसको दंड देने का निश्चय करते हैं-

लक्ष्मण बान सरासन आनू । सोखौं बारिधि बिसिख कृसानू ॥
सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती । सहज कृपन सन सुंदर नीती ॥
ममता रत सन ग्यान कहानी । अति लोभी सन बिरति बखानी ॥
क्रोधिहि सम कामिहि हरिकथा । ऊसर बीज बएँ फल जथा ॥
अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा । यह मत लछिमन के मन भावा ॥

जो लोग धर्म के नाम पर केवल भगवान से माँगने पर विश्वास करते हैं, उनके संबंध में तुलसीदास जी का मत है कि उनका दु:ख कोई दूर नहीं कर सकता । 'विनय पत्रिका' के एक पद में वे लिखते हैं-

देव दनुज मुनि नाग मनुज नहिं जाँचत कोउ उबर्‌यो ।
मेरो दुसह दरिद्र दोष दुख काहू तो न हर्‌यो ॥

भीख माँगने, प्रार्थना करने से दुसह दरिद्र, दोष, दु:ख से कोई भी नहीं बच सकता, अत: किसी से न माँगकर पुरुषार्थ करना चाहिए । याचना करने से न भक्ति मिलती है, न मुक्ति । उन्हें तो प्रबल पुरुषार्थ द्वारा ही उपार्जन किया जाता है ।

जो लोग रूप तो धर्मात्माओं का बनाये फिरते हैं पर आचरण निकृष्ट रखते हैं, 'दोहावली' में उनकी भर्त्सना करते हुए तुलसीदास जी लिखते हैं-

सारदूल को स्वाँग करि, कूकर की करतूति ।
तुलसी ता पर चाहिए, कीरति बिजय बिभूति ॥

यश और विजय प्राप्त करने के लिए सिंह जैसा शौर्य, साहस चाहिए । कुत्ते जैसी दीन मन:स्थिति और परमार्थ का स्वाँग भरने की विडंबना से कुछ हाथ नहीं लगता ।

भले व्यक्ति भी कभी भ्रमवश काल, स्वभाव, संग आदि के प्रभाव से भलाई से हट जाते हैं । किन्तु ईश्वरनिष्ठ व्यक्ति उन्हें तुरंत सुधार लेते हैं । ऐसा करने से दु:ख और दोषों का नाश होकर सुंदर यश की प्राप्ति होती है ।

भूल होने पर न तो हतोत्साह होकर बैठ जावें और न अहंकारपूर्वक अपने दोष को छिपाने की धृष्टता करें । दोष स्वीकार करके उन्हें ठीक करना भी बड़े साहस का काम है । यह सत्साहस ईश्वरनिष्ठों में, सच्चे आस्तिकों में स्वाभाविक रूप से होता है ।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अतः वे भूलों की शृंखला को वहीं तोड़कर दुःख से बच जाते हैं ।

काल सुभाउ करम बरि आई । भलेहु प्रकृति बस चुकइ भलाई ॥
सो सुधारि हरिजन जिमि लेंही । दलि दुख दोष बिमल जसु देंही ॥

किसी का शरीर, वैभव, विद्या, विस्तार देखकर उसे बड़ा नहीं माना जा सकता । बड़प्पन का कारण मनुष्य का मनोबल, आत्मबल होता है । मनस्वी एवं तेजस्वी मनुष्य स्थूल दृष्टि से छोटे अथवा सामान्य दीखते हुए भी अपनी आंतरिक प्रखरता के कारण वस्तुतः अत्यंत सामर्थ्यवान होते और बड़े-बड़े प्रयोजन पूरे करते हैं । राम का शरीर सामान्य किन्तु शिव धनुष के असामान्य होने की बात सोच कर जब सीताजी की माता चिंता करने लगती हैं तो उनकी सखी तेजस्विता की महिमा बताती है, मनोबल और आत्मबल की शक्ति समझाती हैं-

बोली चतुर सखी मृदुबानी । तेजबंत लघु गनिअ न रानी ॥
कहँ कुंभज कहँ सिंधु अपारा । सोषेउ सुजसु सकल संसारा ॥
रबि मंडल देखत लघु लागा । उदयँ तासु त्रिभुवन तम भागा ॥
मंत्र परम लघु जासु बस, बिधि हरिहर सुर सर्ब ।
महामत्त गजराज कहुँ, बस कर अंकुस खर्ब ॥

स्थान का मोह करना निरर्थक है वहीं अपना प्रिय स्थान प्रिय निवास अनुभव किया जाना चाहिए जहाँ सदुद्देश्य की पूर्ति होती हो । सुमित्रा लक्ष्मण के घर-गाँव छोड़कर देश-विदेश में चले जाने में कुछ बुराई नहीं देखती और उन्हें समझाती है कि जहाँ सूर्य निकल रहा हो वहीं दिन और जहाँ राम-काज करना पड़े वहीं अपना अयोध्या जैसा प्रिय निवास स्थान मानना ।

अवध तहाँ जहँ राम निबासू । तहँइ दिबस जहँ भानु प्रकासू ॥

कर्तव्य मार्ग में यदि कुटुंबीजन बाधक होते हों और समझाने पर भी सही मार्ग पर चलने को सहमत न होते हों तो उनकी उपेक्षा भी की जा सकती है, यहाँ तक कि उन्हें छोड़ा भी जा सकता है ।

जाके प्रिय न राम बैदेही ।
तजिये तिन्हहिं कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही ॥
तज्यौ पिता प्रह्लाद बिभीषण बंधु भरत महतारी ।
बलि गुरु तज्यौ कंत ब्रज बनितन भे मुद मंगलकारी ॥

समय की आवश्यकता के अनुरूप युग-धर्म बदलता रहता है । एक परिस्थिति में जो तथ्य प्रयुक्त होने योग्य होते हैं, वे ही बदली हुई परिस्थितियों में अयोग्य हो जाते हैं । आपत्ति-धर्म का अनुसरण बदली हुई परिस्थितियों में करना पड़ता है । इसे युग-धर्म कहते हैं ।

बुध जुग धर्म जानि मन माहीं । तजि अधर्म रति धर्म कराहीं ॥

कार्य सोच विचार करके नहीं करने से, जल्दबाजी में बिना यथार्थता समझे कोई निष्कर्ष निकाल लेने वालों को अंततः पछताना ही पड़ता है । जिसका चिंतन जितना प्रखर, परिष्कृत एवं गहराई में जा सकने वाला होगा वह उतनी ही स्पष्ट वस्तुस्थिति जान सकेगा और उसी आधार पर सही निर्णय करके सही काम कर सकेगा ।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

सुनि गुह कहइ नीक कह बूढ़ा । सहसा करि पछिताहिं बिमूढ़ा ॥
भरत सुभाउ सीलु बिनु बूझें । बड़ि हित हानि जानि बिनु जूझें ॥
गहहु घाट भट सिमिट सब, लेउँ मरम मिलि जाइ ।
बूझि मित्र अरि मध्य गति, तब तस करिहउँ आइ ॥
अनुचित उचित काजु कछु होई । समुझि करिअ भल कह सब कोई ॥
सहसा करि पाछे पछिताहीं । कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं ॥

दुनियाँ में भेड़ियाधसान चल रहा है । जड़ बुद्धि जड़ता का ही सम्मान करती है । लोग वस्तुओं को ही चाहते हैं, किन्तु उन्हें प्राप्त करने से अभिमान बढ़ता है और खोने से शोक संताप में डूबना पड़ता है ।

तुलसी भेड़ी को धसिनि, जड़ जड़ता सनमान ।
पाये ते अभिमान पुनि, खोये मूढ़ अपान ॥

कथा, सत्संग, स्वाध्याय आदि से तो ज्ञान की आरंभिक भूमिका ही पूरी होती है । सम्यक ज्ञान प्राप्त करने के लिए तो सद्ज्ञान को सत्कर्म के रूप में परिणत करना पड़ता है । अन्यथा वह ज्ञान बुद्धि-विलास मात्र बनकर रह जाता है । कर्म में ही ज्ञान की सार्थकता है ।

कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई । सम्यक ग्यान सुकृत कोउ लहई ॥

नीति कहती है कि संकट में मनुष्य का कोई साथ नहीं देता और संकट में जो साथ दे वही हितैषी, बंधु है । यह संकट हमारे लिए कसौटी बनता है और हमारे मित्र-बांधवों के लिए भी कसौटी बनकर उनकी पहचान करा देता है ।

संकट परे परखिए चारी । धीरज धरम मित्र अरु नारी ॥

कर्म और उसका प्रतिफल

यह सृष्टि कर्मफल के आधार पर चल रही है । ईश्वर ने संसार को बनाया और उसे नियमबद्ध, क्रमबद्ध, सुसंचालित रखने के लिए कर्मफल का विधान रचा । कर्म करने की स्वतंत्रता तो हर किसी को दी, किन्तु साथ ही यह विधान भी बना दिया कि हर किसी को अपने कर्मों का कर्मफल भुगतना पड़ेगा । इस नियम से ईश्वर ने अपने को भी मुक्त नहीं रखा, वरन् वह भी उसी कार्य मर्यादा में बँध गया । भगवान राम ने छिपकर बालि को मारा । उसी का प्रतिफल उन्हें कृष्ण जन्म में बहेलिया द्वारा बाण से बेधे जाने के रूप में भुगतना पड़ा । राम के पिता दशरथ ने श्रवणकुमार को बाण से मार दिया । उसके पिता ने शाप दिया कि हमें जिस प्रकार पुत्रशोक में विलख कर मरना पड़ रहा है, वैसे ही तुझे भी मरना पड़ेगा । दशरथ की मृत्यु उसी प्रकार विलख-विलख कर हुई । राम अपने पिता को भी उस कर्मफल से छुड़ाने में समर्थ नहीं हुए । कृष्ण का भानजा सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु महाभारत में मारा गया । अपने सखा, बहनोई और भक्त अर्जुन पर पुत्र शोक की आपत्ति हुई । अभिमन्यु की मृत्यु का समाधान करते हुए कृष्ण ने सुभद्रा और अर्जुन को कर्मफल की प्रबलता समझाई और कहा कि वे भगवान होते हुए भी प्रारब्ध भाग को टालने में असमर्थ हैं ।

यहाँ कर्म की ही प्रबलता है । ईश्वर का किसी के सुख-दुःख में हस्तक्षेप नहीं । भाग्य की अपनी अलग से कोई सत्ता नहीं । वह कर्म की परिणति मात्र है । बिजली

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

हमारी विविध विधि सेवा-साधना में लगी रहती है, पर यदि उसे गलत रीति से छुआ जाय तो प्राण हरण भी कर लेती है और इस बात का ध्यान नहीं करती कि फिटिंग कराने वाला उससे कितना प्रेम करता है । भगवान की भी ऐसी ही विधि-व्यवस्था है, जो सत्पथगामी के लिए विविध विधि सुख-सुविधाएँ प्रस्तुत करती है और कुमार्ग पर चलने वाले को दंड देने से भी नहीं चूकती । भगवान का एक नाम रुद्र भी है, जिसका अर्थ होता है भयंकर । सन्मार्गमागी के लिए वे भक्त, वत्सल, दीनदयाल, करुणानिधि, दयासिंधु आदि हैं पर कुकर्मी के लिए जल्लाद की तरह निर्दय बनकर पूरी कठोरता से दंड व्यवस्था भी करते हैं । इस कठोर व्यवस्था को भक्त लोग मवाद से भरे फोड़े में चीरा लगाना जैसा मानते हैं और वे यह आशा नहीं करते कि पूजा-पाठ से प्रसन्न होकर भगवान अपनी कर्म-व्यवस्था को पलट देंगे । वे भक्त-अभक्त का भेद किए बिना फल की यथोचित व्यवस्था करते हैं । रामायण में इसका उल्लेख अनेक स्थलों पर स्पष्टता से किया गया है ।

'अयोध्याकांड' में कर्म के अनुसार ही फल मिलने का सिद्धांत शास्त्र तथा लोक सम्मत कहा गया है-

करइ जो कर्म पाव फल सोई । निगम नीति अस कह सब कोई ॥

इसी संदर्भ में एक मार्मिक प्रकरण 'अरंण्यकांड' में आता है तब जटायु को शरीर त्याग कर परम गति में जाते हुए देखकर राम आँखों में आँसू भर कर कहते हैं- ''हे तात ! तुमने सत्कर्म द्वारा ही यह श्रेष्ठ प्रतिफल पाया है''-

जल भरि नयन कहहिं रघुराई । तात कर्म निज तें गति पाई ॥

परमात्मा मनुष्य के शुभ-अशुभ कर्मों के अनुसार निर्णय करके फल देता है यह तथ्य 'अयोध्याकांड' में नगरवासियों की चर्चा में स्पष्ट उतरता है ।

सुभ अरु असुभ कर्म अनुसारी । ईस देइ फल हृदय विचारी ॥

वनगमन के कथा-प्रसंग में जब भगवान राम एवं जानकी को धरती पर सोता देखकर निषादराज गुह दुःखी होता है तो लक्ष्मण जी उसे समझाते हुए कहते हैं-

कोउ न काहु दुख सुख कर दाता । निज निज कर्म भोग सब भ्राता ॥
अस विचारि नहिं कीजिअ रोषू । काहुहि व्यर्थ न देंइय दोषू ॥

'अयोध्याकांड' में देवगुरु बृहस्पति देवराज इंद्र को भगवान की कर्म मर्यादा का बोध कराते हुए कहते हैं-

करम प्रधान बिस्व करि राखा । जो जस करै सो तस फल चाखा ॥

मानस के पात्र इस तथ्य को भली प्रकार जानते हैं कि मुख्य तो मनुष्य के कर्म हैं । भगवान का विधान तो उन भले-बुरे कर्मों के फलस्वरूप सुख-दुःख की व्यवस्था भर करता है । श्रीराम, लक्ष्मण एवं जानकी को वन में देखकर ग्रामवासी आश्चर्य करते हैं, किन्तु स्वतः अंपना समाधान यही तथ्य स्मरण करके करते हैं-

जनम हेतु सब कहँ पितु माता । करम सुभासुभ देइ बिधाता ॥

चित्रकूट के प्रसंग में माता सुनयना दुःखी होकर विधि-विडंबना को दोष देने लगती हैं तब माता कौशल्या उन्हें समझाती हुई कहती हैं कि विधाता को दोष देना उचित नहीं । कर्म का सिद्धांत अकाट्य है और उसे विधाता ही जानता है । अपने

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अज्ञान के कारण उसे बुरा नहीं कहना चाहिए ।

कौसल्या कह दोसु न काहू । करम बिबस दुख सुख छति लाहू ॥
कठिन करम गति जानि विधाता । जो सुभ असुभ सकल फल दाता ॥

यह मर्म समझने वाला बुद्धिमान भगवान से अपने स्वार्थ के लिए कर्म-बंधन तोड़ने का आग्रह नहीं करते । मरते समय बालि यही माँगता है कि कर्मवश जिस योनि में भी जाऊँ वहाँ आपके प्रति प्रेम बना रहे ।

'जेहि जोनि जनमों कर्मबस तेहि राम पद अनुरागहूँ ।'

स्वयं भगवान राम 'उत्तरकांड' में भरत को समझाते हुए कहते हैं कि अनीति करने वालों के लिए मैं कठोर बनकर अपनी शुभाशुभ कर्म व्यवस्था को बनाए रखता हूँ ।

काल रूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता । सुभ अरु असुभ कर्मफल दाता ॥

मनुष्य अपने कर्म से अधिक कुछ नहीं पा सकता । यह भाव बड़े सुंदर ढंग से 'दोहावली' में समझाया गया है । वहाँ पर गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि मनुष्य अपने कर्मरूपी कमंडल को सागर, सरिता, कुँआ या जहाँ कहीं भी डुबाये उसमें जल उतना ही आवेगा जितना उसका पात्र है । अर्थात मनुष्य प्रारब्ध को दोष न दें, अपने कर्मों के प्रति सजग रहें ।

करम कमंडलु कर गहे, तुलसी जहँ लगि जाय ।
सागर सरिता कूप जल, बूँद न अधिक समाय ॥

राम-जन्म में ही नहीं कर्म-व्यवस्था की मर्यादा भगवान ने अन्य अवतारों में भी रखी है । मानसकार 'विनय पत्रिका' में लिखते हैं-

हरिहु और अवतार आपने, राखी बेद बड़ाई ।
ले चिबरा निधि दई सुदामहि जद्यपि बाल मिताई ॥

अर्थात हे प्रभु ! आपने सभी अवतारों में वेदों की मर्यादा पाली है । यद्यपि सुदामा से आपकी बचपन की मित्रता थी । पर जब सुदामा ने अपनी शक्ति के अनुसार चावल देने का साहस किया तभी भगवान ने उन्हें अपनी सामर्थ्य के अनुसार संपत्ति दी ।

पाप फल का निराकरण होने का ईश्वरीय तथा सामाजिक दंड भुगतने के अतिरिक्त, दूसरे विकल्प यह हैं कि हम उनका प्रायश्चित्त करें । पूरा समाज एक इकाई है । किसी भी व्यक्ति के साथ किया गया अपराध समस्त समाज के प्रति किया गया है । उसका प्रायश्चित्त यही हो सकता है कि समाज के किसी घटक को जो क्षति पहुँचाई गई है उसकी पूर्ति समाज में सत्प्रवृत्तियों का अभिवर्द्धन करके पतन के लिए खोदे गड्ढे को उत्थान की मिट्टी से पाटकर कर दें । पाप की क्षति को पुण्य की उदारता से पूरा करें । इसी से पापों का स्वेच्छा दंड भुगता जा सकता है और संचित तथा क्रियमाण कर्मों के फल से निवृत्ति मिल सकती है । प्रारब्ध का परिपाक तो तब भी भुगतना ही पड़ता है । भगवान ने सबको कर्म स्वतंत्रता दी है, किन्तु उसका फल देना अपनी निष्पक्ष न्यायसत्ता के अंतर्गत रखा है । उस समदर्शी को किसी को दुःख, किसी को सुख देने की क्या आवश्यकता ?

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

प्रारब्ध कर्म फल को ही विधि का विधान, ईश्वर का कानून कहा जाता है । उसकी अमिटता का उल्लेख मानस में किया गया है ।

पार्वती जी को तप का प्रसंग विख्यात है । वे जानती हैं कि पिछले जन्म में शिवजी की आज्ञा-भंग तथा भगवान के साथ किए कपट व्यवहार का प्रायश्चित्त प्रचंड तप से करना ही होगा । अतः तप का प्रकरण आने पर उनकी माता मैना देवी जब मोहवश दुःखी होती हैं तो वे उन्हें समझाती हैं और कहती हैं कि माताजी ! आप कर्म की व्यवस्था को मिटा नहीं सकतीं । जो कष्ट मुझे भोगना है वह हर हालत में कहीं न कहीं भोगना ही पड़ेगा । अतः कष्ट के भय से मुझे श्रेष्ठ जीवन-क्रम अपनाने से रोको मत ।

तुम सन मिटहिं कि बिधि के अंका । मात व्यर्थ जनि लेहु कलंका ॥
दुख सुख जो लिखा लिलार हमरे । जाव जहँ पाउव तहीं ॥

इसी प्रकार का भाव गुरु वसिष्ठ राम वनगमन तथा दशरथ-मरण के संदर्भ में भरतजी से व्यक्त करते हैं । कर्म के अनुसार अपने शिष्य राजा दशरथ के मरण तथा राक्षसों को दंडित करने के लिए श्रीराम का वनगमन अटल प्रसंग के रूप में सामने आ चुके थे । वे भरत से दुःखी होकर उसे टालने की अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए कहते हैं-

सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलख कहेउ मुनिनाथ ।
हानि लाभ जीवन मरनु, जसु अपजसु बिधि हाथ ॥

विधि ब्रह्मा को भी कहते हैं तथा 'कानून' को भी । कर्म करने में मनुष्य स्वतंत्र है, पर उसका फल देना ब्रह्मा अथवा भगवान की नियम-व्यवस्था के अंतर्गत है । यही भाव गुरु वसिष्ठ जी का है ।

यश-अपयश, हानि-लाभ, मर्यादा के अनुसार अथवा विधि (नियम-व्यवस्था) के अनुरूप ही मिलते हैं । इसकी पुष्टि मानस के अन्य स्थलों पर भी मिलती हैं । काकभुशुंडि संवाद में कहा गया है-

पावन जसु कि पुण्य बिनु होई । बिनु अघ अजसु कि पावइ कोई ॥

इसी प्रकार मानस के वंदना प्रसंग में संतों और असंतों की सद्गति और दुर्गति का कारण समझाते हुए कहा गया है कि यह सब यश-अपयश, सद्गति-दुर्गति अपने-अपने कर्मों के अनुसार प्राप्त होती है ।

भल अनभल निज निज करतूती । लहत सुजस अपलोक विभूती ॥

यह मान्यता गलत नहीं है कि पुण्य कर्मों द्वारा पाप कर्मों का प्रभाव मिट जाता है, किन्तु बड़े पापों को काटने के लिए अधिक पुण्यों की आवश्यकता है, तभी हिसाब बराबर होगा । जो लोग गंगास्नान, पंचगव्य-पान जैसे छोटे उपचारों से अपने बड़े दुष्कर्मों का शमन चाहते हैं वे भूल करते हैं । यथार्थता यही है कि जितना बड़ा पाप है उतना ही बड़ा पुण्य करने से प्रायश्चित्त हो सकना संभव है । 'विनय पत्रिका' में तुलसीदास जी इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि मेरे पापों का तो जंगल लगा है और सत्कर्म इतने कम हैं कि उनसे पाप-कर्म कट नहीं सकते । जंगल काटने के लिए सबल कुल्हाड़ी चाहिए । नाखून की धार से वे कैसे कटेंगे ।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

तौ क्यों कटत सुकृत नख ते मो पै बिपुल बृंद अघ बन के ।
कहि है कौन कलुष मेरे कृत करम बचन अरु मन के ॥

भगवान ने कर्म-व्यवस्था में कहीं ढिलाई नहीं रखी है । कर्म करने में मनुष्य को स्वतंत्र रखा है । भले-बुरे की बुद्धि देने के अतिरिक्त वे उसके कर्मों में हस्तक्षेप नहीं करते और जो भले-बुरे कर्म अपने निर्णय से कर लेता है उसका फल उसे निश्चित रूप से देते रहते हैं । 'विनय पत्रिका' में तुलसीदास जी ने यह भाव बहुत स्पष्ट किया है । लिखा है कि हिरण्यकश्यपु को तप के अनुरूप वरदान तो दिया पर प्रह्लाद के प्रसंग में उसे रोका नहीं । रावण को तप-प्रभाव से बार-बार सिर तो दिए पर राम विरोध के संदर्भ में कोई दबाव नहीं डाला ।

कनक कशिपु विरंचि को जन करम अरु बात ।
सुतहिं दुखबत विधि न बरज्यो काल के घर जात ॥
संभु सेवक जान जग बहु बार दिए दसशीश ।
करत राम बिरोध सो सपनेहु न हटक्यो ईस ॥

'विनय पत्रिका' में ही अन्यत्र इस दृढ़ व्यवस्था को प्रबल कर्म को डोरी बतलाते हुए लिखा है-

जिन बाँधे सुर असुर नाग मुनि प्रबल कर्म की डोरी ॥

अर्थात ईश्वर ने देवता, राक्षस, नाग और मुनि सभी को कर्म की मजबूत रस्सी से बाँध रखा है ।

अन्य पद में कर्मफल-व्यवस्था पर विश्वास प्रकट करते हुए लिखा है कि जो कोई दूसरे के गिराने के लिए कुँआ खोदता है वह दुष्ट स्वतः उसमें गिरता है ।

जोइ जोइ कूप खनैगो पर कहँ सो सठ फिरि तेहि कूप परै ।

समस्त मनुष्य जाति एक सूत्र में बँधी हुई है । प्रत्येक का कर्तव्य है कि वह अन्यों को दुष्कर्मों से रोके और सत्कर्मों में प्रवृत्त करे । अपना ही संशोधन करना पर्याप्त न समझे, वरन् पूरे समाज को अपना ही विराट रूप मानकर उसे परिष्कृत बनाने के लिए प्रयत्नशील रहे । अन्य या दूसरों के दुष्कृत्यों का फल अपने को भी लपेट में ले लेगा । पड़ोसी के घर में लगी आग फैलती हुई अपना घर भी जला देगी, पड़ोस में फैली गंदगी अथवा बीमारी अपने घर में भी प्रवेश करेगी । पड़ोस के दुष्ट लोग अपने को सज्जन होते हुए भी त्रास देंगे । इसलिए अपनी ही तरह अपने समाज को समुन्नत, सुसंस्कृत बनाना उचित है । इस सामाजिक कर्तव्य की उपेक्षा करने पर उन्हें भी दंड भुगतना पड़ता है जो व्यक्तिगत रूप से देखने में निर्दोष लगते हैं, पर सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वाह न करने के कारण व्यापक दृष्टि से देखने पर वे भी दोषी हैं और उन्हें भी दंड भुगतना पड़ता है । गाँव के जिस मुखिया के पास बंदूक होती है उसका कर्तव्य है कि यदि उस गाँव में डकैती पड़े तो डाकुओं का मुकाबला करने के लिए बंदूक का उपयोग करे । यदि वह कायरतावश छिपकर बैठा रहे, मूकदर्शक बना रहे, बंदूक का उपयोग न करे, तो उसे भी सरकार और समाज अपराधी मानते हैं, भर्त्सना करते हैं और उसकी बंदूक छिन जाती है । इसी सामाजिक कर्तव्य का उद्‌बोधन करते हुए रामायण में कहा गया है-

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

और करै अपराध कोई, और पाव फल भोग ।
अति बिचित्र भगवंत गति, को जग जानै जोग ॥

भगवान की इस कर्म व्यवस्था की तरफ से संसार बेखबर रहता है, किन्तु भक्त उसके महत्व को समझता है । इसीलिए अपनी करनी प्रभु मर्यादा के विपरीत होने पर उसे भय लगता है । 'विनय पत्रिका' में यही भाव व्यक्त करते हुए तुलसीदास जी लिखते हैं–

जेहि निशि सकल जीव सूतहिं तब कृपा पात्रजन जागै ।
जिन करनी विपरीत देखि मोहि समुझि महाभय लागै ॥

यदि हम भगवान की इस कर्म व्यवस्था को ध्यान में रखें तो अपने प्रयासों तथा आचरणों को सही दिशा में चलाकर जीवन की सार्थकता तथा भगवान का प्रेम प्राप्त कर सकते हैं ।

परिवार–प्रकरण

परिवार का विकास नीति-निष्ठा के आधार पर

परिवार को सुसंगठित, सुविकसित एवं समुन्नत बनाने की आधारशिला एक ही है कि घर के हर सदस्य को धर्म–कर्तव्यों के पालन की निष्ठा गहराई तक हृदयंगम कराई जाय । किसी को स्वार्थी, विलासी, व्यक्तिवादी दुर्गुणी न बनने दिया जाय । जिस परिवार में धर्म–कर्तव्यों के प्रति आस्था होगी, उसके हर सदस्य को स्वार्थपरता की निकृष्टता और स्नेह सहयोग की सद्भावी श्रेष्ठता का भले प्रकार ज्ञान होगा । इस भाव–प्रेरणा से प्रेरित होकर वे अधिकारों को भुलाकर कर्तव्य के लिए दत्तचित्त रहेंगे । फलस्वरूप स्नेह भरा सहयोग और उदार व्यवहार विकसित होगा । यह सुमति, संपत्ति जिस परिवार में होगी वह राम–परिवार की तरह आदर्श बनेगा और यशस्वी होगा ।

भगवान राम के परिवार में संपन्नता तथा सुख–शांति के साथ पराक्रम का अद्भुत समन्वय मिलता है । धनुष यज्ञ में राम, लक्ष्मण के कर्तृत्व का बखान जनकपुर के दूत राजा दशरथ से करते हैं । राजा दशरथ जब गुरु वशिष्ठ से अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हैं तो वे इन सफलताओं का श्रेय उनकी धर्म परायणता को ही देते हुए कहते हैं–

सुनि गुरु बोले अति सुख पाई । पुण्य पुरुष कहँ महि सुखदाई ॥
जिमि सरिता सागर पहिं जाहीं । यद्यपि ताहि कामना नाहीं ॥
तिमि सुख संपत्ति बिनहि बुलाए । धर्मसीलु पहिं जाहिं सुभाए ॥

दशरथ धर्म परायण थे । गुरु वशिष्ठ के निर्देशों पर चलते हुए उन्होंने स्वयं तथा अपने परिजनों को धर्मनिष्ठ बनाया था । यही कारण था कि हर जगह हर प्रकरण में यश, सराहना तथा सफलता मिलती गई । दैवयोग से विपरीत परिस्थितियाँ आईं भी तो धर्मनिष्ठ सदस्यों के अविचलित भाव के आगे परास्त होती गयीं तथा प्रगति का मार्ग रुका नहीं ।

गुरु वशिष्ठ को भी अपने शिष्यों पर विश्वास था । अत: उन्होंने केवल धर्मपरायण निर्णय लेने का संकेत ही उन्हें समय पर किया तथा वे उसी आधार पर आगे बढ़ते गए । राम के वनगमन तथा दशरथ की मृत्यु के बाद भरत सबके अनुचित

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org